पतंजलि विश्वविद्यालय की प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

सुषेणदेव-प्रणीतः

आयुर्वेद-महोदधिः

(सुषेण-निघण्टुः)

अन्नपानविधि-विषयक आयुर्वेद का महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ

(हिन्दी-भाषान्तर सहित)

आचार्य बालकृष्ण

सुषेणदेव-प्रणीतः

आयुर्वेद-महोदधिः

(सुषेण-निघण्टुः)

अन्नपानविधि-विषयक आयुर्वेद का महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ

(हिन्दी-भाषान्तर सहित)

विषय-सूची

।। इत्यनुक्रमणिका ।।

ॐ

भूमिका

प्राचीन काल से आयुर्वेद ही भारतवर्ष में स्वास्थ्यलाभ व रोगप्रतिकार का एकमात्र आधारभूत शास्त्र रहा है। परम्परा के अनुसार वेदों के आधार पर आयुर्वेद की रचना हुई है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है।

प्राचीन भारत सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही उन्नत था। विद्या के क्षेत्र में तो यह विश्व में शिरोमणि ही था, क्योंकि समस्त भूमण्डल के लोग भारतवर्ष में शिक्षा ग्रहण करने आते थे। मनुजी महाराज का निम्न वचन इसी तथ्य को सूचित करता है-

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनु०-२.२०)

अर्थात् इस देश में उत्पन्न विद्वानों से पृथ्वी के सभी मानव अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करते आए हैं। इस प्रकार भारत सकलविद्यानिधान होने से जगद्गुरु के रूप में विख्यात रहा है। यहाँ विद्या की अन्य विविध शाखाओं की भाँति आयुर्वेद के क्षेत्र में भी बहुसंख्य एवं विशाल ग्रन्थों की रचना हुई है। वर्त्तमान में उपलब्ध चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, काश्यपसंहिता, अष्टांगसंग्रह आदि ग्रन्थ उनमें प्रमुख हैं। मध्यकाल में इन मूल संहिताओं के आधार पर अनेक मौलिक व गम्भीर टीकाएं रची गईं तथा बहुत से स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ भी रचे गए। इसी क्रम में वैद्यराज सुषेणदेव द्वारा रचित **'आयुर्वेद-महोदधि'** नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

ग्रन्थपरिचय-

प्रस्तुत ग्रन्थ के नाम में विद्यमान 'महोदधि' शब्द का अर्थ है- महासागर। इस प्रकार **'आयुर्वेद-महोदधि'** का अर्थ हुआ- आयुर्वेद का

महासागर। इससे सूचित होता है कि यह प्राचीन संहिताओं की शैली में रचा गया एक विशाल ग्रन्थ रहा है, जिसमें अष्टांग आयुर्वेद का विस्तृत वर्णन है। इसी ग्रन्थ का एक भाग **'सुषेण-निघण्टु'** के नाम से उपलब्ध होता है। अन्नपानविधि-विषयक इस 'सुषेण-निघण्टु' की बहुत सी हस्तलिखित प्रतियाँ भारतवर्ष के विभिन्न हस्तलेखागारों में उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत संस्करण में 'आयुर्वेद-महोदधि' के अन्नपानविधि-विषयक इसी **'सुषेण-निघण्टु'** को सुगम हिन्दी-भाषान्तर के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय-

प्रस्तुत ग्रन्थ के आरम्भ में ग्रन्थकार ने स्वयं प्रतिपाद्य विषय का निर्देश इस प्रकार किया है-

नत्वा धन्वन्तरिं देवं गणाध्यक्षं दिवौकसाम्।
अन्नपानविधिं वक्ष्ये समस्तमुनिसम्मतम् ॥१॥

अर्थात् भगवान् धन्वन्तरि को प्रणाम करके मैं (सुषेणदेव) समस्त- मुनिसम्मत अन्नपान-विधि का वर्णन करूँगा।

इससे स्पष्ट है कि 'आयुर्वेद-महोदधि' के प्रस्तुत भाग का मुख्य विषय 'अन्नपान-विधि' है। इसके अन्तर्गत विविध भोज्य-पदार्थों के गुणों तथा भोजनविधि का सरल व सरस शैली में विस्तृत विवेचन किया गया है। 'अन्नपान-विधि' आयुर्वेद का एक अतीव महत्त्वपूर्ण अथवा कहना चाहिए कि सबसे महत्त्वपूर्ण व आवश्यक अंग है; क्योंकि ऋषियों ने बड़े विचारमन्थन के पश्चात् यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि उचित व अनुचित आहार ही क्रमशः आरोग्य व रोगों का कारण होता है[१]। चरक, सुश्रुत, काश्यप व वाग्भट आदि ने अपनी संहिताओं में 'अन्नपानविधि अध्याय'[२] शीर्षक से इस विषय का विशद विवेचन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ

१. हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति। अहिताहारः पुनर्व्याधीनां निमित्तमिति।। चरकसंहिता, सूत्रस्थान-२५.३१;

२. द्रष्टव्य- चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय-२७; सुश्रुसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय-४६;

में प्राचीन मुनिवचनों के आधार पर इस विषय का और अधिक विशदता व विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

वैद्यराज सुषेण के वर्णन की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सुन्दर सुललित छन्दों व अलंकारों का प्रयोग करते हुए अपनी आयुर्वेद-विषयक इस रचना को बहुत ही सरस, रोचक व काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इससे पाठक को विषय का ग्रहण बहुत सहजता से हो जाता है तथा अध्ययन में रुचि भी बनी रहती है। ग्रन्थारम्भ के मंगलाचरण-पद्यों में ग्रन्थकार की इस काव्यात्मक शैली को देखा जा सकता है-

पीयूषं पिबतो विहंगमपतेर्ये बिन्दवो विच्युता-
स्तेभ्योऽभूदभया दिवाकरकरश्रेणीव दोषापहा।
कालिन्दीव बलप्रहर्षजननी गंगेव शूलिप्रिया
वह्नेर्दीप्तिकरी घृताहुतिरिव क्षोणीव नानारसा॥२॥

(अर्थ पृ०-१ पर द्रष्टव्य)

इस पद्य में श्लिष्टोपमालंकार की मनोहारी छटा देखते ही बनती है। ऐसी ही सुललित शैली सम्पूर्ण ग्रन्थ में पद-पद पर परिलक्षित होती है। इस सरस रचना के सुन्दर, सुललित व गेय छन्द छात्रों को सरलतापूर्वक कण्ठस्थ करवाए जा सकते हैं। कण्ठस्थ किए गये ये छन्दोबद्ध सारगर्भित वचन जीवनभर मार्गदर्शक के रूप में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सुन्दर काव्यात्मक शैली में अन्नपान-विधि व स्वास्थ्य-सम्बन्धी विभिन्न आवश्यक विषयों- व्यायाम, अभ्यंग (मालिश), उद्वर्त्तन (उबटन), स्नान आदि पर इस रचना में विस्तृत प्रकाश डाला है।

ग्रन्थकार का परिचय-

सुषेण नामक एक महान् वैद्य का वर्णन आदिकवि वाल्मीकि-विरचित रामायण में उपलब्ध होता है। राम-रावण युद्ध में भयंकर

काश्यपसंहिता, खिलस्थानम्, भोज्योपक्रमणीय अध्याय-५; अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान, अध्याय-६;

शक्तिप्रहार से लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर अत्यन्त व्याकुल व विषादग्रस्त हुए मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को आश्वस्त करते हुए सुषेण ने लक्ष्मण की चेतना लौटाने के लिए महोदय नामक पर्वत से विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, सञ्जीवकरणी व सन्धानी नामक महौषधियाँ लाने का निर्देश दिया। उनके निर्देश पर हनुमान त्वरित गति से औषधियाँ ले आए तथा सुषेण ने नस्य के रूप में लक्ष्मण को औषधियाँ दीं, तदनन्तर वीर लक्ष्मण तुरन्त घाव व पीड़ा से मुक्त होकर उठ खड़े हुए[१]।

किंवदन्ती के अनुसार कुछ लोगों द्वारा यह ग्रन्थ उसी वैद्यराज सुषेण द्वारा रचित माना जाता है। ग्रन्थ में उपलब्ध निम्न श्लोक द्वारा भी कुछ ऐसा ही भाव प्रकट होता है-

मया सुषेणेन कृतं हिताय प्राणप्रसादं जनयेच्च शीघ्रम्।
श्रीरामचन्द्रक्षितिपालकाय सुसुश्रुते वै चरके यदुक्तम्॥[२]

परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। वास्तविकता यह है कि दक्षिण भारत के एक कवित्त्वशक्ति-सम्पन्न वैद्यराज सुषेण ने यह ग्रन्थ अपने आश्रयदाता राजा रामचन्द्र के लिए बनाया था। इसमें चरक, सुश्रुत आदि के अतिरिक्त कुछ अर्वाचीन ग्रन्थों से भी सामग्री ली गई। इस प्रकार यह अर्वाचीन रचना है, परन्तु बहुत ही सुन्दर, सुललित व उपयोगी है। ग्रन्थकार के जन्मस्थान, निवासस्थान, स्थितिकाल आदि के विषय में विशेष जानकारी के लिए गवेषणा अपेक्षित है।

---

१. एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः। समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम्॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा। सञ्जीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्॥
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय। लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः स महाद्युतिः।
सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा। विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्॥
(वाल्मीकिरामायण-युद्धकाण्ड, सर्ग-१०१.२९,३२,४४)

२. आयुर्वेद-महोदधि, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, अलवर (राजस्थान) से प्राप्त हस्तलिखित प्रति, भोजनानुपान, पत्र-६२, श्लोक-६८५;

मौलिकता-

यद्यपि ग्रन्थारम्भ में सुषेण ने कहा है कि मेरा विषय-प्रतिपादन समस्त मुनिसम्मत है- अर्थात् प्राचीन संहिताकार मुनियों के आधार पर है, तथापि आयुर्वेद के मुनिसम्मत सिद्धान्तों को सूक्ष्म व तत्त्वदर्शिनी दृष्टि से विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने में सुषेण की सूझ-बूझ व सूक्ष्मेक्षिका बहुत ही अभिनन्दनीय व वन्दनीय है। इन्होंने आयुर्वेद के सिद्धान्तों का बहुत ही वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण व सरस वर्णन किया है।

अन्नपान-विधि के प्रसंग में सकल जगत् का जीवनाधार होने से जल का ही सुषेण द्वारा सर्वप्रथम वर्णन किया गया है। वह भी इतनी सूक्ष्मेक्षिका के साथ कि उनके आयुर्वेद-विषयक अगाध ज्ञान व अद्भुत कवित्वशक्ति को देख पाठक आश्चर्यचकित हो जाता है। जल के विषय में स्वास्थ्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण के साथ जितना सूक्ष्म व विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है। इसी प्रकार दुग्ध आदि पदार्थों का विवेचन भी बहुत ही तथ्यपरक व विशद रूप में किया गया है। दुहने के अनन्तर दूध को शीघ्र ही न उबाला जाए तो वह किस प्रकार विकृत व घातक हो जाता है, इसका वर्णन द्रष्टव्य है-

मुहूर्त्तपञ्चकादूर्ध्वं क्षीरं भजति विक्रियाम्।
तदेव द्विगुणे काले विषवद्धन्ति मानवम्॥

तस्माच्छृतं चाप्यशृतं पयस्तात्कालिकं पिबेत्। (क्षीरवर्ग-...)

दोहन करने पर पाँच मुहूर्त्त के अनन्तर दूध विकृत हो जाता है। इससे दुगुने काल में तो यह इतना विकृत हो जाता है कि विषतुल्य बनकर मारक हो जाता है। इसलिए श्रृत (उबले) या अश्रृत (बिना उबले धारोष्ण) दूध को तत्काल ही पी लेना चाहिए, अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए; क्योंकि देर तक रखने से दूध विकृत हो जाता है।

इस प्रकार के उल्लिखित तथ्यों को देखकर आधुनिक चिकित्सा-पद्धति वाले चिकित्सक भी आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति के प्रति हार्दिक रूप से श्रद्धावनत होते हैं। ग्रन्थगत अन्नपानविधि-विषयक कुछ अन्य

महत्त्वपूर्ण तथ्य भी द्रष्टव्य हैं-

यन्मूला व्याधयः सर्वे सम्भवन्ति भयावहाः।
तदेव भेषजं तेषां सिद्धिदं संस्कृतं जलम्।। (पानीयवर्ग-...)

जिस अशुद्ध या अनुचित रूप से प्रयुक्त जल से सभी भयावह रोग पैदा हो जाते हैं, वही जल संस्कृत व समुचित रूप में प्रयोग में लाया जाए तो उन सभी रोगों का निवारक औषध बन जाता है।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं
निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनार्थं
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि।। (पानीयवर्ग-...)

बहुत अधिक पानी पीने से भोजन नहीं पचता है तथा सर्वथा पानी न पीने से भी वही दोष होता है। अतः जठराग्नि को बढ़ाने के लिए बार-बार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए।

इस प्रकार सुन्दर काव्यात्मक शैली में अन्नपान, नानाविध व्यञ्जन, शिखरिणी (शिखरन), ताम्बूल-सेवन व अनुलेपन आदि विभिन्न विषयों पर रोचक व महत्त्वपूर्ण जानकारी के साथ इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ का यह सब वर्णन बहुत ही वैज्ञानिक, तथ्यपूर्ण एवं मौलिक है।

ग्रन्थ का अन्वेषण व संशोधन-

आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों में सुषेण के नाम से बहुत से उत्तम उद्धरण उपलब्ध थे, परन्तु इनका कोई प्रकाशित ग्रन्थ अभी तक हमारी जानकारी में नहीं आया था। भारतवर्ष के हस्तलेखागारों के सूचीपत्रों के आधार पर अन्वेषण करने से विदित हुआ कि सुषेणदेव-विरचित आयुर्वेद-महोदधि (सुषेण-निघण्टु) की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। विभिन्न हस्तलेखागारों से सम्पर्क करने पर हमें इसकी १७ प्रतिकृतियाँ (फॉटो कॉपी) उपलब्ध हुईं। जिन हस्तलेखागारों के सौजन्य से ये प्रतियाँ उपलब्ध हुईं, वे इस प्रकार हैं-

१. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, अलवर (राजस्थान)।

२. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर (राजस्थान)।
३. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, उदयपुर (राजस्थान)।
४. राष्ट्रीय अभिलेखागार, काठमांडू (नेपाल)।
५. श्रीमहावीरजैन आराधना केन्द्र, आचार्य कैलाससागरसूरि ज्ञानभण्डार, कोबा, गांधीनगर (गुजरात)।
६. लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात)।
७. आनन्दाश्रम हस्तलेखागार, पूना (महाराष्ट्र)।
८. नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलिखित ग्रन्थालय, वाराणसी (उ.प्र.)।
९. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (कला भवन), वाराणसी (उ.प्र.)।
१०. प्राच्य-विद्या मन्दिर, सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बडौदा (गुजरात)।
११. अडियार लायब्रेरी, थियोसोफिकल सोसायटी, अडियार (चेन्नई)।

उपलब्ध सभी हस्तलिखित प्रतियों का विवरण ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट-**१.** में दिया गया है। वहाँ इनके आदिम व अन्तिम पृष्ठ की प्रतिकृति भी प्रकाशित की है। इन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का पाठशोधन किया गया है। प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों का परिष्कृत संस्करण तैयार करना एक कठिन एवं अध्यवसाय-साध्य कार्य है; क्योंकि लिपिकरों द्वारा हाथ से तैयार की गई प्रतिलिपियों में अनेक अशुद्धियाँ व पाठ की अव्यवस्था हो जाती है। ग्रन्थ के मूलपाठ का शोध न व परिष्कार करने के लिए सभी उपलब्ध प्रतिलिपियों का अवध ानपूर्वक अवलोकन आवश्यक होता है। अतः सर्वप्रथम उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'आयुर्वेद-महोदधि' का पाठशोधन किया गया। हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध पाठान्तरों में से समुचित व शुद्धतम पाठ को मूलग्रन्थ में रखा गया। शेष पाठभेदों को पादटिप्पणियों में दर्शाया गया है। इस प्रकार पाठशोधन के अनन्तर इस ग्रन्थ का परिष्कृत रूप सामने आने पर ही सरल हिन्दी भाषान्तर सम्भव हो सका, जो जनसामान्य के लिए आवश्यक था।

इस प्रकार परिष्कृत रूप में यह ग्रन्थ पहली बार हिन्दी अनुवाद

के साथ आयुर्वेदप्रेमी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। यह बहुत ही सरल व सरस रचना है तथा सुगम हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत की गई है, अतः सामान्य पाठक के लिए भी अति उपयोगी है। इसमें आयुर्वेद के गूढ सैद्धान्तिक विषयों या जटिल चिकित्सा-प्रक्रियाओं का वर्णन नहीं है, अपितु उचित आहार-विहार, व्यायाम, अभ्यंग आदि के विषय में स्वास्थ्यरक्षक जीवनशैली का रोचक वर्णन है। ये विषय प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य रूप से जानने योग्य हैं। अतः सभी व्यक्ति इसके अध्ययन से अन्नपान-विषयक आयुर्वेद की परम्परा का उत्तम ज्ञान प्राप्त कर स्वास्थ्यलाभ व रोगनिवारण में समर्थ हो सकते हैं। आशा है यह ग्रन्थ जनता में आयुर्वेद के प्रति रुचि व जागरूकता पैदा कर जनसामान्य को स्वास्थ्य के विषय में आत्मनिर्भर बनाएगा तथा आयुर्वेदीय परम्परा को श्रद्धास्पद, सुदृढ़ व ग्राह्य बनाने में सहयोगी होगा।

कृतज्ञता ज्ञापन-

'आयुर्वेद-महोदधि' (सुषेण-निघण्टु) की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिकृति (फोटो कॉपी/सी.डी.) उपलब्ध करवाने वाले पूर्वनिर्दिष्ट सभी शोधसंस्थानों व हस्तलेखागारों के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ को सुरक्षित रखा व अतिशय उदारता व सौहार्द के साथ प्रकाशनार्थ उपलब्ध कराया। इनके अतुलनीय सहयोग से ही यह दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाश में आ सका है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के संस्कृत-मूलपाठशोधन के अध्यवसाय-साध्य कार्य में हमारे सहयोगी श्री विजयपालशास्त्री प्रचेता का विशेष योगदान रहा है। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। ग्रन्थ के अन्तिम शोधन, परिष्कार व सज्जा में शोधविभाग, पतञ्जलि योगपीठ के ....

....

....

........., वैद्य राजेश मिश्र आदि का विशेष सहयोग रहा, एतदर्थ उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद व शुभकामना प्रकट करता हूँ।

ॐ

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः । श्रीगणेशाय नमः ।

आयुर्वेद-महोदधिः

(सुषेण-निघण्टुः)

नत्वा धन्वन्तरिं देवं गणाध्यक्षं दिवौकसाम्।
अन्नपानविधिं वक्ष्ये समस्तमुनिसम्मतम् ॥१॥[1]

देवों के गणाध्यक्ष भगवान् धन्वन्तरि को प्रणाम करके मैं (सुषेण) अब समस्त मुनियों द्वारा सम्मत अन्नपान-विधि का वर्णन करूँगा।

पीयूषं पिबतो विहंगमपतेर्ये बिन्दवो विच्युता-
स्तेभ्योऽभूदभया दिवाकरकरश्रेणीव दोषापहा।
कालिन्दीव बलप्रहर्षजननी गंगेव शूलिप्रिया
वह्नेर्दीप्तिकरी घृताहुतिरिव क्षोणीव नानारसा॥२॥

विहंगमपति (पक्षिराज गरुड) के अमृतपान करते हुए कुछ बिन्दु (बूंदें) भूमि पर गिर पड़ीं, उन्हीं से अभया (हरीतकी/हरड़) पैदा हुई। भाव यह है कि अमृत से उत्पन्न होने के कारण अभया अमृत जैसे गुणों

---

१. प्रथम श्लोक के अनन्तर ज.-१, ज.-२ तथा ला. हस्तलिखित ग्रन्थों में निम्न पद्य अतिरिक्त रूप में प्राप्त हुआ है-

तार्तीये निपुणा वदन्ति जलदं तस्मान्निशीथे शरत्
पूर्वं शैशिरिकस्ततो हिमऋतुः सूर्योदयादग्रतः।
मध्याह्ने च तथा वदन्ति निपुणा ग्रैष्मी ऋतुः स्यात्ततो
वासन्ती कथिता ऋतुस्तुमुनिभिः पूर्वाह्णमेवं सदा॥

निपुण जन दिन के तृतीय भाग में वर्षा ऋतु बतलाते हैं। इसलिए निशीथ (आधी रात) में शरद् ऋतु मानी जाती है। तदनन्तर पहले शिशिर ऋतु का काल होता है और उसके पश्चात् सूर्योदय से पहले तक हेमन्त ऋतु का समय होता है। दिन का पूर्व भाग वसन्त ऋतु व मध्याह्न भाग ग्रीष्म ऋतु के रूप में माना जाता है। इस प्रकार रात-दिन के समय को छह ऋतुओं में विभाजित किया जाता है।

वाली है। श्लेषयुक्त उपमाओं द्वारा इसका गुणवर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि-

अभया दिवाकर (सूर्य) की करश्रेणी (किरणसमूह) के समान दोषनिवारक होती है- अर्थात् जैसे सूर्य अपने किरणसमूह से संसार के पूतिभाव (सड़न) आदि दोषों को दूर कर देता है, उसी प्रकार अभया भी अपने प्रभाव से सेवन करने वाले के मल का पाक व वात का अनुलोमन (अधोमार्ग से निस्सारण) करते हुए शरीरदोषों को दूर कर देती है। जैसे कालिन्दी (यमुना नदी) बलप्रहर्षजननी (बल/बलराम के प्रहर्ष की जननी है, उसे प्रसन्न करने वाली) है, उसी प्रकार अभया भी सेवन करने वाले के बल व प्रहर्ष की जननी है, अर्थात् उसे निरोग कर बल व प्रसन्नता से युक्त कर देती है। जैसे गंगा शूलिप्रिया (शूली/त्रिशूली भगवान् शंकर को प्रिय) है, वैसे ही अभया भी शूलिप्रिया (शूल वाले/पेटदर्द वाले के लिए प्रिय) है क्योंकि यह उदरशूल आदि को तुरन्त दूर कर देती है। जैसे घृताहुति (घी की आहुति) वह्निदीप्तिकरी (अग्नि को उद्दीप्त करने वाली) होती है, उसी प्रकार अभया भी वह्निदीप्तिकरी (सेवन करने वाले की जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाली) होती है। जैसे क्षोणी (पृथ्वी) नाना रसों वाली होती है, ऐसे ही अभया भी नाना रसों (मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय इन पाँच रसों) वाली होती है। इस प्रकार सुन्दर, सुललित व सटीक शिलष्ट उपमाओं द्वारा ग्रन्थकार वैद्यशिरोमणि कविराज सुषेणदेव ने यहाँ हरीतकी के दिव्य गुणों का वर्णन किया है।

श्रेष्ठा शालाक्यतन्त्रे कफपवनहरी दीपनी पाचनी या
शूलोदावर्त्तगुल्मज्वरगदगुदजान् कुष्ठपाण्डुप्रमेहान्।
श्वासातीसारकासाश्मरिजठररुजो नाशयन्त्याशु राजन् !
सेयं पायादपायात् सकलसुखकरी सर्वदा चारु पथ्या॥३॥

३. ०पवनहरा-आ.को.ने.ला., ०पवनहरी-अ.। ०त्याशु-आ.को.ने.ला., ०न्त्याशु-अ.।

हे राजन् ! जो शालाक्य तन्त्र अर्थात् ऊर्ध्वजत्रुगत (गले से ऊपर के आँख, नाक, कान आदि के) रोगों की चिकित्सा में श्रेष्ठ है, कफ व वात

का हरण करने वाली तथा दीपनी व पाचनी है, शूल, उदावर्त्त, गुल्म, ज्वररोग, अर्श (बवासीर), कुष्ठ, पाण्डुरोग, सर्वविध प्रमेह, श्वास, अतिसार, कास (खाँसी), अश्मरी (पथरी) व उदररोगों को शीघ्र ही नष्ट करने वाली है एवं स्वास्थ्य-सम्बन्धी सकल सुख देने वाली, सदा उत्तम पथ्य रूप पथ्या (हरीतकी) नामक दिव्य ओषधि है, वह तुम्हें सर्वदा अपाय (रोग/कष्ट) से बचावे।

शश्वज्जीवितवृद्धिदा स्मृतिकरी निःशेषजाड्यापहा
रोगघ्नी च रसायनी हितकरी कृच्छ्राश्मरीच्छेदनी।
शस्ता स्तम्भनरेचनाग्निसदने प्रायेण या पाचनी
सा त्वां पातु हरीतकी क्षितितले हृद्यानवद्यानिशम्॥४॥

४. हिततरा-आ.को., हितकरी-अ.ने.। ०च्छेदिनी-आ.ने.ला., ०च्छेदनी-अ.को.।
०नाग्निसदने-ने., ०नांगसदने-को., ०नाग्निजनने-अ.आ.।
हृद्यानवद्या-अ.आ.ने.ला., हृद्यातिवैद्या-को.।
स्मृतिकरा-ला.। पाचिनी-ला.

हे राजन् ! जो सदा जीवनवृद्धि (आयुर्वृद्धि) करने वाली, सुखदायक, सर्वविध जड़ता (कफवात-जन्य स्तब्धता या निष्क्रियता) को हरने वाली, रोगनाशक, रसायनस्वरूप, हितकर, मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने वाली व अश्मरी (पथरी) को काटने वाली, स्तम्भन, विरेचन व अग्निमान्द्य में प्रशस्त, मुख्य रूप से पाचनी (आम का पाचन करने वाली) होती है तथा भूमि पर सदा सर्वदोषों से रहित एवं हितकर वैद्य से भी बढ़कर है, वह हृद्या (हृदय के लिए प्रिय व हितकर) हरीतकी सदा तुम्हारी रक्षा करे।

संहारिणी स्याद् गददानवानां
संसेवकानां हितकारिणी स्यात्।
अनेकयोगैर्ऋषिभिः कृता सा
शिवा शिवं वः प्रकरोतु नित्यम्॥५॥

५. हृदयामयानां-को.आ.ला., गुदजामयानां-अ., गददानवानां-ने.।
शिवं तत्-को.आ., शिवं वः-अ.ने.।

जो गद (रोग) रूपी दानवों का संहार करने वाली है तथा संसेवा (सेवा/सेवन) करने वालों के लिए हितकारिणी होती है, जिसे ऋषियों ने अनेक योगों (ध्यानप्रकारों/नुस्खों) द्वारा सिद्ध किया है, वह शिवा (दुर्गा/हरीतकी) सदा तुम्हारा शिव (कल्याण) करे।

✶ इस पद्य में ग्रन्थकार कविराज सुषेण ने दुर्गा व हरीतकी– इन दोनों का शिलष्ट शब्दों द्वारा एक साथ वर्णन करते हुए मंगलकामना की है। इसमें शिवा शब्द व उसके विशेषणों से दुर्गा व हरीतकी– इन दोनों अर्थों के एक साथ प्रस्तुत होने से दोनों की प्राकरणिकता है, अतः यहाँ श्लेषालंकार है। **'नानार्थसंश्रयः श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रितः'**– (कुवलयानन्दः–64)

विशेष– यहाँ ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण करते हुए वैद्यशिरोमणि कविवर सुषेणदेव ने हरीतकी के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया है। इससे उनकी दृष्टि में आयुर्वेद की इस दिव्य ओषधि का सर्वातिशायी महत्त्व व्यञ्जित होता है।

उन्मूलिनी वातकफादिकानां
सम्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणाम्।
विशोषिणी मूत्रमलादिकानां
जाता जनित्रीव हरीतकी नृणाम्॥६॥

वात–कफ आदि का उन्मूलन करने वाली, बुद्धि, बल एवं इन्द्रियों का सम्मीलन करने वाली, मल–मूत्र का विशोषण करने वाली हरीतकी (हरड़) मनुष्यों की माता के समान है।

✶ यह पद्य 'आयुर्वेदमहोदधि (सुषेण–निघण्टु) के नेपाल से उपलब्ध हस्तलेख में ही मिला है।

✶ अगले पद्य में अनुपानभेद से सब ऋतुओं में हरीतकी के सेवन का विधान करते हुए सुन्दर उपमालंकार के साथ उसे सर्वरोगनाशक बतलाया है–

ग्रीष्मे तुल्यगुडां च सैन्धवयुतां मेघावनद्धाम्बरे

तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव गदा नश्यन्तु ते शत्रवः॥७॥

७. ससैन्धव-अ.आ.ने., सुसैन्धव-को.।

ग्रीष्म में गुड़ के साथ, वर्षा में सैन्धव लवण (सेंधा नमक) के साथ, शरद् में निर्मल शर्करा के साथ, हेमन्त में शुण्ठी (सौंठ) के साथ, शिशिर में पिप्पली (पीपल) के साथ, वसन्त में क्षौद्र (मधु) के साथ सेवन की जाती हुई हरीतकी को पाकर जैसे सारे रोग नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन् ! तुम्हें सामने पाकर तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट हो जावें।

वसन्त ऋतु में चैत्र व वैशाख मास होते हैं। ग्रीष्म में ज्येष्ठ-आषाढ़, वर्षा में श्रावण-भाद्रपद, शरद् में आश्विन-कार्तिक, हेमन्त में मार्गशीर्ष-पौष तथा शिशिर में माघ-फाल्गुन मास होते हैं। इस प्रकार वर्ष में दो-दो मास की ये छह ऋतुएं होती हैं।

अगले पद्य में ग्रन्थकार वर्णन करते हैं कि किस प्रकार गम्भीर अपथ्य करने वाले व्यक्ति रोगग्रस्त होकर नष्ट हो जाते हैं-

अव्यायामरता वसन्तसमये ग्रीष्मे व्यवायप्रियाः
सक्ताः प्रावृषि पल्वलाम्भसि नवे कूपोदकद्वेषिणः।
कट्वम्लोष्णरताः शरद्दधिभुजो हेमन्तनिद्रालसाः
शीताम्भःपरिगाहिनस्तु शिशिरे नश्यन्तु ते शत्रवः॥८॥

८. सिक्ताः-अ.ने., सक्ताः-आ.को.।

हे राजन् ! वसन्त ऋतु में अव्यायाम-रत (व्यायामरहित/ आरामतलबी में आसक्त), ग्रीष्म ऋतु में व्यवायप्रिय (स्त्रीसंग में आसक्त), वर्षा ऋतु में कूपजल (कुए के पानी) से द्वेष करने वाले तथा पल्वल (छोटे तालाबों) के जल में आसक्त अर्थात् उनका पानी पीने वाले व उनमें स्नान करने वाले, शरद् ऋतु में कटु (चरपरे), अम्ल व उष्ण पदार्थों के रसिक एवं दही का सेवन करने वाले, हेमन्त ऋतु में निद्रालस (दिन में नींद लेने वाले आलसी) तथा शिशिर ऋतु में शीतल जल वाले तालाब या नदी आदि में अवगाहन (स्नान) करने वाले तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही

रोगग्रस्त होकर नष्ट हो जावें।

★ इस कथन से स्पष्ट है कि वसन्त में व्यायाम न करना, ग्रीष्म में स्त्रीसंग करना, वर्षा में तालाब के पानी का सेवन करना, शरद् में कट्वम्लोष्ण (मिर्च, खटाई व गर्म पदार्थों) का सेवन व दही का सेवन, हेमन्त में दिन में सोना, शिशिर में शीतल जल का अवगाहन- ये बहुत ही गम्भीर अपथ्य हैं। इनका सेवन करने वाले व्यक्ति रोगों का शिकार होकर नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठी मत्स्यदधीनि पिच्छिलजलं वातेन रक्ते तथा
शूली वैदलमन्नमत्तु बहुलं स्निग्धं प्रमेही द्रवम्।
स्त्रीसेवामतिदुर्बलश्च पटुनाप्यम्लं क्षयी च श्रमं
निद्रां कण्ठरुजार्दितो भजतु ते राजन् रिपूणां गणः॥९॥

हे राजन् ! कुष्ठरोग वाला तुम्हारा शत्रुसमूह मत्स्य व दही खाये, वातरक्त वाला पिच्छिल जल पिये, शूली (पेटदर्द वाला) दाल खाये, प्रमेही बहुत स्निग्ध व द्रव का सेवन करे, अतिदुर्बल व्यक्ति स्त्रीसंग व क्षारलवण एवं अम्ल पदार्थों का सेवन करे, क्षयी श्रम करे एवं कण्ठरोग वाला दिवाशयन करे, इस प्रकार के घातक अपथ्य करने वाला तुम्हारा शत्रुगण शीघ्र ही नष्ट हो जाये।

भाव यह है कि दही व मछली- एक साथ खाना कुष्ठ रोग का बड़ा कारण है। इसी प्रकार पेटदर्द वाले का दाल-सेवन, प्रमेहग्रस्त का स्निग्ध द्रव्यसेवन, दुर्बल का स्त्रीसंग व अधिक नमक एवं खटाई खाना, क्षयग्रस्त का श्रम करना व कण्ठरोगी का अधिक सोना अति हानिकर अपथ्य है। इनका सेवन करने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

★ यह पद्य आयुर्वेदमहोदधि (सुषेण-निघण्टु) के प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, अलवर (राजस्थान) से उपलब्ध हस्तलेख में ही मिला है।

सुषेणदेव उवाच- तत्रादौ सकलसञ्जीवनद्रव्यप्राधान्याद् वारिगुणाः कथ्यन्ते-

सुषेणदेव कहते हैं कि जल ही सकल प्राणियों का मुख्य जीवन हेतु द्रव्य है। अतः सर्वप्रथम उसी के गुणों का वर्णन किया जाता है-

स्वादुपाकरसं शीतं त्रिदोषशमनं तथा।
पवित्रमतिपथ्यं च गाङ्गं वारि मनोहरम्॥१०॥ गङ्गोदकगुणाः

१०. गाङ्गम्-ला.

गंगाजल विपाक व रस में मधुर, शीतल एवं त्रिदोषशामक होता है। यह अत्यन्त पवित्र, पथ्य (हितकारी) तथा मनोहारी होता है।

प्रोक्तं स्वादु स्वच्छमत्यन्तरुच्यं
पथ्यं पाक्यं पाचनं पापहारि।
तृष्णामोहध्वंसनं चातिमेध्यं
प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्॥११॥

भागीरथीजल (गंगाजल) स्वादु (मधुर), अत्यन्त स्वच्छ, रुचिकर व पथ्य (हितकर) होता है। यह भोजन-द्रव्यों के पाक के लिए अतीव उचित माना जाता है तथा पाचक होता है। गंगाजल पाप (दोष) का हरण करने वाला, तृष्णा (प्यास की व्याकुलता) व मोह (बेहोशी) को नष्ट करता है। यह मेधा (शास्त्र ग्रहण करने वाली बुद्धि) के लिए अति हितकारी है तथा प्रज्ञा (लोकव्यवहार-निष्णात बुद्धि) को बढ़ाता है।

★ यह पद्य आयुर्वेदमहोदधि (सुषेण-निघण्टु) के नेपाल से उपलब्ध हस्तलेख में ही मिला है।

तस्मात्किञ्चिद् गुरुतरं स्वादु पित्तापहं परम्।
वातलं वह्निजननं सूक्ष्मं च यमुनाजलम्॥१२॥ यमुनोदकगुणाः

१२. रूक्षं च- ला.। यामुनम्-ला.।

यमुनाजल पूर्वोक्त गंगाजल से कुछ गुरु (भारी), स्वादु व परम पित्तहर होता है। यह वातकारक, जठराग्निवर्धक एवं रूक्ष होता है।

अतिस्वच्छं प्रशस्तं च शीतलं लघु लेखनम्।
पित्तश्लेष्मप्रशमनं नार्मदं सर्वरोगनुत्॥१३॥ नार्मदम्

१३. ०रोगहृत्-को.अ.ला., ०रोगजित्-ने., ०रोगनुत्-आ.।

नर्मदा का जल अति स्वच्छ, प्रशस्त, शीतल, लघु व लेखन होता है।

यह पित्त व कफ का शमन करने वाला तथा सर्वरोगहर माना जाता है।

कण्डूकुष्ठप्रशमनं वह्निसन्दीपनं परम्।
पाचनं वातपित्तघ्नं वारि गोदावरीभवम्॥१४॥ गोदावरीयम्

१४. गोदावर्यम्-ला.।

गोदावरी नदी का जल कण्डू (खुजली) एवं कुष्ठरोग का शमन करने वाला तथा अत्यन्त वह्निसंदीपन (जठराग्निवर्धक) होता है। यह पावन (पवित्र) व वातपित्तहर माना जाता है।

पित्तार्त्तिरक्तार्त्तिसमीरहारि पथ्यं परं दीपनपापहारि।
कुष्ठादिदुष्टामयदोषहारि गोदावरीवारि तृषानिवारि॥१५॥

गोदावरीजल पित्तरोग, रक्तपित्त व वातरोगों का निवारक होता है। यह अतीव पथ्य, दीपन व पापनाशक माना गया है। गोदावरी का जल कुष्ठ आदि दुष्ट रोगों का नाशक, त्रिदोषहर व तृषानिवारक होता है।

★ यह पद्य आयुर्वेदमहोदधि (सुषेण-निघण्टु) के नेपाल से उपलब्ध हस्तलेख में ही मिला है।

रूक्षं च शीतलं वारि वातरक्तप्रकोपनम्।
किञ्चिल्लघुतरं स्वादु कृष्णवेणीसमुद्भवम्॥१६॥

कृष्णवेण्युदकम्

१६. कृष्णवेण्योः-आ., कृष्णवेण्याः-अ.को.ला., कृष्णवेणी-ने.,

कृष्णवेणी नामक नदी का जल रूक्ष, शीतल तथा वातरक्त-प्रकोपकारक होता है। यह कुछ लघु व स्वादु (मधुर) होता है।

कावेरीसलिलं पथ्यमामघ्नं बलवर्णकृत्।
आग्नेयमतिशीतं च दद्रुकुष्ठविनाशनम्॥१७॥ कावेर्युदकम्

१७. बलवर्द्धनम्-अ., बलवर्णकृत्-आ.को.ने.। ०शान्तं-आ., ०शीतं-अ.को.ने.। दद्रुकुष्ठविनाशनम्-आ.को., दद्रुकुष्ठविषापहम्-ने., कण्डूकुष्ठविनाशनम्-अ.।

कावेरी नदी का जल पथ्य, आमनाशक (आँव को पचाने वाला), बलवृद्धि करने वाला व रंग निखारने वाला होता है। यह आग्नेय

(अग्निगुणयुक्त) होते हुए भी शीत प्रभाव वाला होता है तथा दाद, कुष्ठ व विष का निवारण करता है।

त्रिदोषशमनं पथ्यं स्वादु हृद्यं च जीवनम्।
आमक्लमपिपासाघ्नं दिव्यं वारि मनोहरम्॥१८॥ आकाशजलम्

१८. श्रमघ्नं च-ने., श्रमक्लम०-आ., आमक्लम०-अ.को.।

दिव्यजल (वर्षाजल)- दिव्य अर्थात् 'दिव्' (आकाश) से गिरने वाला वृष्टिजल त्रिदोषशामक, पथ्य, स्वादु, हृद्य व जीवन (जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला), आमघ्न (आँव को पचाने वाला), पिपासाघ्न (तृष्णानिवारक) व मनोहारी होता है।

पूर्वदेशोद्भवा नद्यः सर्वा वातकफप्रदाः।
पश्चिमाः पित्तलाः सर्वाः कफवातविनाशनाः।
इति संक्षेपतः प्रोक्ता नद्यः क्षुद्रास्तु तादृशः॥१९॥

१९. क्षुद्रास्तु सम्प्रति-ला.।

पूर्वदेश (पूर्वी भारत) की सभी नदियाँ वातकफकारक होती हैं। पश्चिम देश (पश्चिमी भारत) की सभी नदियाँ पित्तवर्धक व कफवातनाशक होती हैं। इस प्रकार संक्षेपतः बड़ी नदियों का वर्णन किया है। इन बड़ी नदियों के साथ मिलने वाली क्षुद्र (छोटी नदियाँ) भी इन्हीं (बड़ी नदियों) जैसे गुणों वाली होती हैं।

सामुद्रमुदकं विस्रं सक्षारं सर्वरोगकृत्।
अचक्षुष्यं मदप्लीहगुल्मोदावर्त्तनाशनम्॥२०॥

२०. सर्वदोषकृत्-ला.

समुद्र का जल विस्र (कच्चे मांस की गन्ध वाला), अत्यन्त क्षार (खारा) होता है। यह सर्वदोषकारक व अचक्षुष्य (नेत्रों के लिए अहितकर) होता है। समुद्रजल मद (नशा), प्लीहा के रोग, गुल्म व उदावर्त्त का नाशक होता है।

दिव्यादीनि प्रवक्ष्यामि गुणदोषविचारतः।
दिव्यान्तरिक्षनादेयकौपचौण्डेयसारसम्।

ताडागमौद्भिदं शैलं जलमष्टविधं मतम्॥२१॥

२१. तोयादीनां प्रवक्ष्यामि गुणदोषौ विशेषतः-ला.
०नादेयं-ला.।

अब गुण-दोष की दृष्टि से दिव्य आदि जलों का वर्णन करेंगे- दिव्य, आन्तरिक्ष, कौप, चौण्डेय, सारस, ताडाग, औद्भिद् व शैल- इन भेदों से आठ प्रकार का माना गया है।

शरदम्भोदनिर्मुक्तं महावैडूर्यसन्निभम्।
सर्वदोषापहं स्वादु दिव्यमित्युच्यते जलम्॥२२॥

२२. शरत् पयोद-ला.।

शरद्-ऋतु (आश्विन-कार्तिक) के बादलों द्वारा बरसाया गया महान् वैदूर्य मणि के समान निर्मल, मधुर, सर्वदोषहर जल 'दिव्य' नाम से जाना जाता है।

प्रावृड्जलदनिर्मुक्तमव्यक्तस्वादुलक्षणम्।
वारि स्फटिकसंकाशमान्तरिक्षमिति स्मृतम्॥२३॥

प्रावृट् (वर्षाकालीन) मेघों द्वारा बरसाया हुआ अव्यक्त व स्वादु रस वाला स्फटिक के समान धवल जल 'आन्तरिक्ष जल' माना जाता है।

नद्यां शैलप्रसूतायां गोमेदकमणिप्रभम्।
प्रशस्तभूमिभागस्थं जलं नादेयमुच्यते॥२४॥

पर्वत से निकली नदी में गोमेद मणि के समान कान्ति वाला, प्रशस्त भूमि भाग में बहने वाला जल 'नादेय जल' कहलाता है।

भूम्युत्खातसमुद्भूतं महानीलसमुद्भवम्।
विमलं मधुरास्वादं कौपं जलमुदाहृतम्॥२५॥

२५. महाशैलसमुद्भवम्-ला.।

भूमि को खोदने पर निकलने वाला महानील के समान कान्ति वाला, निर्मल व मधुर आस्वाद वाला 'कौप जल' कहा जाता है।

स्वयं शीर्णशिलाश्वभ्रे नीलोत्पलसमप्रभम्।
लतावितानसञ्छन्नं चौण्डेयमिति सञ्ज्ञितम्॥२६॥

२६. नीलोत्पलदलप्रभम्-ला.।

लता-वितान से आच्छादित, शीर्ण शिलाओं से आवृत, श्याम मेघ व नीलकमल जैसी कान्ति वाला जल 'चौण्ड्य' कहलाता है।

नद्याः शैलवराद्वापि स्रुतमेकान्तसंस्थितम्।
कुमुदाम्भोजसञ्छन्नं वारि सारसमुच्यते॥२७॥

नदी या पर्वत से बहकर आया हुआ, एकान्त स्थानों में स्थित कुमुद एवं कमल से आच्छादित जल 'सारस' कहलाता है।

प्रशस्तभूमिभागस्थं नैकसंवत्सरोषितम्।
काषायं मधुरास्वादं ताडागं सलिलं स्मृतम्॥२८॥

प्रशस्त भूमि भाग में स्थित अनेक वर्षों से सिञ्चित कषाय व मधुर आस्वाद वाला जल 'ताडाग जल' कहलाता है।

शैलसानुसमुद्भूतं स्पृष्टं वातहिमातपैः।
लघु शीतामलं स्वादु स्मृतं प्रास्रवणं जलम्॥२९॥

२९. प्रस्रवणं-ला.

पर्वतशिखरों से निकलने वाला, वायु तथा हिम व आतप से सम्पर्कित लघु, शीतल, निर्मल, स्वादु जल प्रस्रवण (झरने) के जल के रूप में प्रसिद्ध है।

एतानि महिषोष्ट्राश्वगोमृगाजगजादिभिः।
अदूषितानि पात्रेषु मृण्मयेषु विनिक्षिपेत्॥३०॥

३०. मृन्मयेषु-ला.।

महिष (भैंसा), उष्ट्र (ऊँट), अश्व (घोड़ा), गौ (गाय/बैल), मृग (हरिण), अज (बकरा/बकरी), गज (हाथी) आदि द्वारा दूषित न किये इन उपरोक्त जलों को मृण्मय अर्थात् मिट्टी के पात्रों में रखें।

सर्वमाकाशजं वारि स्वादुतो ह्यनुमीयते।
पार्थिवं तु रसाभिज्ञैर्भूमिभागेषु लक्ष्यते॥३१॥

सर्वविध आकाशज जल (आकाश से वृष्टि के रूप में गिरा हुआ

जल) स्वाद द्वारा ही पहचान लिया जाता है। पृथ्वी से निकला हुआ जल तो रस की परीक्षा करने वाले विशेषज्ञों द्वारा पहचाना जाता है।

रक्तकपोतपीताभपाण्डुश्वेतासितेषु च।
कट्वम्लतिक्तक्षारकषायमधुरादिभिः॥३२॥

३२. ०पीताभं-ला.

कोई जल लाल, कबूतरीवर्ण, पीताभ (पीलापन लिये), पाण्डुवर्ण, श्वेतवर्ण व कृष्णवर्ण में मिलता है। रस की दृष्टि से कोई जल कटु, कोई अम्ल, तिक्त, क्षार (खारा), कषाय, मधुर आदि रसों से युक्त होता है।

नादेयं वातलं रूक्षं दीपनं लघु लेखनम्।
ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च॥३३॥

नादेय (नदी का जल) वातल (वातवर्द्धक), रूक्ष, दीपन, लघु व लेखन होता है। तड़ाग (तालाब) का जल वातल, स्वादु, कषाय व कटुपाकी (विपाक में कटु) होता है।

वातश्लेष्महरं वाप्यं सक्षारं कटु पित्तलम्।
चौण्ड्यमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफकृन्न च॥३४॥

३४. कफकृत् तथा-ला.।

वापी (बावड़ी) का जल क्षार व कटु रसयुक्त, पित्तवर्द्धक तथा वातकफ का हरण करने वाला होता है। चौण्ड्य जल अग्निकर (जठराग्नि को बढ़ाने वाला), रूक्ष, मधुर तथा कफकारक होता है।

कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघु प्रस्रवणोद्भवम्।
सक्षारं पित्तलं कौपं श्लेष्मघ्नं दीपनं लघु॥३५॥

३५. वातजिल्लघु-ला.।

प्रस्रवण (झरने) का जल, कफहर, दीपन, हृद्य व लघु होता है। कुए का जल सक्षार (कुछ खारा), पित्तवर्द्धक, कफनाशक, दीपन एवं लघु होता है।

मधुरं पित्तशमनमविदाह्यौद्भिदं स्मृतम्।
कैदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरु दोषलम्॥३६॥

औद्भिद (भूमि के अन्दर से फूटकर निकला) जल मधुर, पित्तशामक व अविदाही होता है। कैदार (क्यारी का जल) विपाक में मधुर तथा गुरु व दोषवर्धक होता है।

तद्वत्पाल्वलमुद्दिष्टं विशेषाद्दोषलं च तत्।
सर्वदोषहरं हृद्यं निरवद्यं च जाङ्गलम्।।३७।।

उसी के समान पाल्वल (छोटे तालाब) का जल कहा गया है। यह विशेष रूप से दोषवर्धक होता है। जांगल (वृक्षबहुल क्षेत्र का जल) सर्वदोषहर, हृद्य व निर्दोष होता है।

पाके विदाहि तृष्णाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्धनम्।
दीपनं स्वादु शीतं च तोयं साधारणं लघु।।३८।।

३९. शमघ्नं प्रीतिवर्धनम्-ला.।

साधारण जल पाक में विदाही, तृष्णाघ्न (प्यास को बुझाने वाला), प्रशस्त व प्रसन्नता बढ़ाने वाला होता है। यह दीपन, स्वादु, शीतल व लघु होता है।

आनूपदेशजं वारि सान्द्रं च गुरु पिच्छिलम्।
मधुरं श्लेष्मजननं स्निग्धं वातादिकोपनम्।।३९।।

आनूप देश (जलबहुल क्षेत्र) का जल सान्द्र, गुरु व पिच्छिल होता है। यह मधुर, कफजनक, स्निग्ध होता है तथा वात आदि दोषों को कुपित करता है।

।। इति जाङ्गलानूपसाधारणोदकम् ।।

कौपं प्रास्रवणं वसन्तसमये ग्रीष्मे तदेवोचितं
काले चानभिवृष्टिदेशमथवा चौण्ड्यं घनानां पुनः।
नीहारे सरसीतडागविषयं सर्वं शरत्संगमे
सेव्यं सूर्यसितांशुरश्मिपवनव्याधूतदोषं पयः।।४०।।

४०. काले वा नववृष्टिजातमथवा-ला.।

वसन्त ऋतु (चैत्र-वैशाख मास) में कुए व झरने का जल उचित होता है तथा ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ मास) में भी यही जल उपयोगी

होता है। वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद मास) में चौण्ड्य जल उपयोगी होता है। हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष मास) में झील व तडाग का जल उपयोगी होता है तथा शरद् ऋतु (आश्विन-कार्तिक मास) में इन सभी का जल सूर्य, चन्द्र व पवन के सम्पर्क से दोषरहित होने के कारण सेवनयोग्य होता है।

अव्यक्तरसगन्धं यत् शस्तं वातातपापहम्।
पवित्रं चाम्बु तत्पथ्यमन्यत्र क्वथितं पिबेत्।
घर्मसूर्येन्दुसंसक्तमहोरात्रात्परं त्यजेत्॥४१॥

जो जल अव्यक्त रस व अव्यक्त गन्ध वाला अर्थात् अपमिश्रण से रहित सहज स्थिति में होता है, वह वात व आतप (गर्मी) के प्रभाव को दूर करता है। वह जल पवित्र व पथ्य होता है। यदि ऐसा स्वच्छ जल न मिले तो अन्य जल को क्वथित करके (उबालकर) पीना चाहिए। घर्म (धूप) व इन्दु (चन्द्र) एवं सूर्य के सम्पर्क में आया जल भी शुद्ध होता है।

यच्चाव्यक्तरसं हिमं लघुतरं घर्मांशुमूर्छापहं
तृष्णोष्मातपमोहहृच्छ्रमहरं तन्द्रातिनिद्रापहम्।
हृद्यं स्वादु विपक्तिदं स्मृतिकरं दाघौघविच्छेदनम्
इष्टं दीर्घबलायुषां धृतिकरं सञ्जीवनं जिविनाम्॥४२॥

४२. तच्चाव्यक्तरसं-ला.। मोहहं श्रमहरं-ला.। दाहौघ-ला., दाघौघ-आ.। जीवनम्-आ.।

जो अव्यक्त रस, शीतल, लघुतर जल होता है वह गर्मी, मूर्छा, तृष्णा, ऊष्मा, आतप, मोह को दूर करने वाला, श्रमजनित थकान को दूर करने वाला होता है। तन्द्रा व निद्रा का निवारक होता है। यह जल हृद्य, स्वादु, पाचन, स्मृतिवर्धक, दाहनिवारक होता है तथा उत्तम बल व दीर्घ आयु के लिए वांछित होता है। यह धृतिकर, संजीवन व जीवन को बढ़ाने वाला व जीवन का साक्षात् आधार होता है।

विण्मूत्रतृणनीलिकाविषयुतं तप्तं घनं फेनिलं
दन्तग्राह्यमनार्तवं सलवणं शैवालकैः सम्भृतम्।

लूतातंतुविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपंकान्वितं
चन्द्रार्कांशुसुगोपितं न च पिबेन्नीरं सदा दोषलम्।।४३।।

४३. लूताजंतु०-ला.।

जो जल मलमूत्र, तृण (घास-फूस), नीलिका (इन्दीवर लता) एवं विष से युक्त होता है तथा उष्ण, घन (घनता से युक्त), फेनिल (झाग वाला), दांतों को लगने वाला, अनार्तव (बिना ऋतु के बरसा हुआ जल), सलवण (नमकीन), शैवाल से युक्त, मकड़ी के जालों से युक्त, गुरुतर (अति भारी), पत्तों के समूह से व्याप्त पङ्क (कीचड़) युक्त तथा चन्द्र व सूर्य की किरणों से वंचित रहता है, ऐसे दोषकारक जल को कभी नहीं पीना चाहिए।

प्रसन्नं स्वादु हृद्यं च पथ्यं सन्तर्पणं लघु।
एकप्रदेशजं सेव्यं सदा पर्युषितं जलम्।।४४।।

स्वच्छ, स्वादु (मधुर), हृद्य, पथ्य, सन्तर्पण व लघु- इस प्रकार का गुणसम्पन्न एकप्रदेशज (एक क्षेत्र का, जिसमें व्यक्ति का निवास हो, ऐसा) शीतल जल सदा सेवनीय होता है।

कासश्वासातिसारज्वरकिटिभकटीकोष्ठकुष्ठप्रमेहान्
मूत्रग्राहोदरार्शःश्वयथुकृमिवमीन्कर्णनासाक्षिरोगान्।
ये चान्ये वातपित्तक्षयकफजनिता व्याधयः सन्ति जन्तो-
स्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः।।४५।।

४५. कफजकृता-ला.।

रात्रि बीतने पर उषःकाल में जल पीने से खांसी, दमा, अतिसार, ज्वर, किटभ (कुष्ठ), कटि (कमर का विकार, दर्द आदि), कोष्ठ (त्वचा पर होने वाली मण्डलाकार सूजन), कुष्ठ, प्रमेह, मूत्राघात, उदरविकार, बवासीर, श्वयथु (सूजन) आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा कृमि, वमि (उल्टी), कण्ठ, सिर, कर्ण, शंख व नेत्र के रोग भी दूर हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य वात, पित्त, कफ व श्रम से होने वाले रोग हैं, वे भी नित्य प्रातः जल पीने से नष्ट हो जाते हैं।

अम्भसां चुलुकानष्टौ पिबेदनुदिनं नरः।
नवनागबलो भूत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी॥४६॥

४६. नवनागबलं दद्यात्-आ.,ला.।

प्रतिदिन (प्रातः उठकर) जल के आठ चुलुक (चुल्लू) पीने चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य हाथी जैसी बलिष्ठता व नवीनता (ताजगी) प्राप्त करके सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जीता है।

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्वियुक्तः॥४७॥

४७. रोगैर्विमुक्तः-ला.।

घनी रात बीतने पर प्रातः उठकर जो मनुष्य नासिका से पानी पीता है, वह बुद्धिसम्पन्न, नेत्रों से गरुड़ के समान तीव्र दृष्टि वाला, वलि (झुर्रियों) व पलित (केशों की श्वेतिमा) से रहित व सर्वरोगमुक्त हो जाता है।

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः
कालत्रयेऽपि नयनद्वितयं जलेन।
आसिञ्चति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि-
रोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः॥४८॥

जो व्यक्ति प्रतिदिन तीन समय (प्रातः, मध्याह्न व सायम्) शीतल जल से मुख भरके आँखों पर जल से आसेचन करता है (छींटे देता है), वह कभी भी नेत्र रोगों से पीड़ित नहीं होता है।

नादेयं नवमृद्घटप्रणिहितं सन्तप्तमर्कांशुभिः
रात्रौ सम्प्रतिपूज्यमिन्दुकिरणैर्मन्दानिलान्दोलितम्।
शीतं भिन्नमणिप्रभं लघुतया नास्तीति शंकावहं
पाटल्युत्पलकेतकीसुरभितं संसेवयेद्वारि तत्॥४९॥

नये मिट्टी के घड़े में रखा हुआ जो नदीजल सूर्यकिरणों से संतप्त

होता है तथा रात्रि में चन्द्रकिरणों से सम्पर्कित होता है। इसी प्रकार शुद्ध वायु के सम्पर्क में आता है, ऐसा जल शीतल, मणि के समान कान्तिवाला व लघु होने के कारण शंकावह नहीं होता है। ऐसे स्वच्छ जल को पाटली, नीलकमल व केतकी (केवड़ा) के पुष्पों से सुगन्धित करके पीना चाहिए।

रे रे रुद्रजटाटवीपरिमलव्यालोलभस्माविलं
प्रोन्मज्जत्सुरसुन्दरीकुचतटस्फारोल्लसत्सीकरम्।
धाराधौतकरालिताम्बरतनु निःशेषतापापहं
गाङ्गं तुङ्गतरङ्गभङ्गगहनं पानीयमानीयताम्॥५०॥

अरे अरे सेवको ! भगवान् शंकर की जटाटवी (जटा रूपी जंगल) में घूमने से वहाँ की भस्म से मिश्रित तथा सुरसुन्दरियों (देवांगनाओं) के स्नानकाल में उनके स्तनकलशों से टकराने पर उछलती शीकरों (फुहारों) वाले, अपनी धाराओं के प्रवाह से आकाश को प्रक्षालित करने वाले, सम्पूर्ण तापों को नष्ट करने वाले, उत्तुंग (ऊँची) तरंगों की भंगिमा से गहन बने गांग-पानीय (गंगाजल) को पीने के लिए लाओ।

इस पद्य में कविवर सुषेण ने संस्कृत-कविता की सुन्दर सुललित, अलंकृत शैली में गंगाजल का वर्णन किया है।

स्वच्छं सज्जनचित्तवल्लघुतरं दीनार्त्तिवच्छीतलं
पुत्रालिङ्गनवत्तथैव मधुरं बालस्य सञ्जल्पवत्।
एलोशीरलवङ्गचन्दनलसत्कर्पूरजातीदलैः
पाटल्युत्पलकेतकीसुरभितं पानीयमानीयताम्॥५१॥

५१. चन्दनदलत्कर्पूरजातिफलं-ला.।

अरे सेवको ! जो जल सज्जन-चित्त के समान निर्मल है, दीनार्त्ति (दुःखी की पुकार) के समान लघु (हल्का) है, पुत्र के आलिंगन के समान शीतल है। बाल (शिशु) की भोली तुतलाती वाणी के समान मधुर है, एला (इलायची), उशीर (खश), लवंग (लौंग), चन्दन, कपूर, जायफल, पाटली, नीलकमल व केतकी (केवड़ा) के फूलों से सुगन्धित है। ऐसा मनोहारी जल पीने के लिए ले आओ।

प्रस्तुत पद्य में भी ग्रन्थकार ने काव्यात्मक शैली में सुन्दर उपमाओं के साथ पेय जल की स्वच्छता, लघुता, शीतलता, मधुरता व सुगन्ध का वर्णन किया है।

कण्ठ्यं दीपनपाचनं लघुतरं सश्वासकासापहं
हिध्माध्मानवज्वरामशमनं श्लेष्मापहं वातजित्।
संशुद्धौ वरवस्तिशुद्धिकरणं हृत्पार्श्वशूलापहं
गुल्मारोचकपीनसे निगदितं तुर्यांशमुष्णं जलम्॥५२॥

५२. पथ्यं दीपन०-ला.। शीतोष्णमेतज्जलम्-ला.।

उबालने पर जिसका तुर्यांश (चतुर्थांश) ही शेष रह गया है, ऐसा जल कण्ठ्य (कण्ठ के लिए हितकर), दीपन, पाचन, लघुतर (बहुत हल्का), श्वास (दमा) व कास (खांसी) को दूर करने वाला, हिध्मा (हिचकी), आध्मान (गैस से पेट फूलना) में लाभकर, नवज्वर (नए बुखार), आम (आंव) को दूर करने वाला, कफनाशक व वातहर होता है। संशोधन के अवसर पर प्रयोग हेतु उत्तम, बस्ति (मूत्राशय) का शोधक, हृदय और पार्श्व (बगल) के दर्द को दूर करने वाला होता है। यह जल गुल्म, अरोचक (मन्दाग्नि), पीनस (नजला) में बहुत लाभकारी होता है।

पित्तोत्तरे पित्तरोगे पित्तासृक्कफपित्तयोः।
मूर्छाछर्दिज्वरे दाहे तृष्णातीसारपीडिते॥५३॥

धातुक्षीणे विषार्त्ते च सन्निपाते विशेषतः।
शस्तं चिरोत्थरोगेषु शृतशीतं जलं सदा॥५४॥

५३. पित्तोदरे-को.।
५४. शोषेऽक्षिरोगे च-ने.। विरोधिरोगे च-ला.को.1, चिरोत्थरोगेषु-आ.।

पित्त की अधिकता में, पित्तरोग में, पित्तरक्त व कफपित्त में, मूर्छा (बेहोशी), छर्दि (उल्टी), ज्वर व दाह में तृष्णा, अतिसार से पीड़ित होने पर, धातुक्षीणता में, विष से पीड़ित होने पर तथा सन्निपात, क्षय व नेत्र रोग में शृतशीत (उबालकर शीतल किया हुआ) जल अति उत्तम होता है।

छत्रामृतं विषं वज्रं चत्वारो वारिणो गुणाः।
भुक्तान्तरे च प्रत्यूषे अभुक्ते भोजनैः सह॥

५५. छत्रामृतं–को.1 अ.ने., शस्त्रामृतं–आ.ला.।

(अग्रसंहारकाले च भुक्तादौ परतो निशि।– ने.)
आयुराहारकाले तु भुक्त्वा नोपरितो निशि॥५५॥

५५. च भुक्त्वा नो परतो निशि–ला.।

छत्र, अमृत, विष व वज्र ये चार जल के गुण या प्रभाव होते हैं। भोजन के उपरान्त प्यास लगने पर जल छत्र (छतरी) की तरह रक्षक का काम करता है। प्रातः (उषःकाल) में जल अमृत का काम करता है। अभुक्त अर्थात् भूख लगने पर अन्न न खाकर पानी से ही पेट भर लिया जाए तो यह जल भूख को खत्म करने के लिए विष का काम करता है तथा भोजन के साथ जल वज्र का काम करता है– अर्थात् वज्र के समान दृढ़ता कारक होता है।

यन्मूला व्याधयः सर्वे सम्भवन्ति भयावहाः।
तदेव भेषजं तेषां सिद्धिदं संस्कृतं जलम्॥५६॥

५६. सिद्धिज्ञैः–ला.।

जिस अशुद्ध या अनुचितरूप से प्रयुक्त जल से सभी भयावह रोग पैदा हो जाते हैं, वही जल संस्कृत व समुचित रूप में प्रयोग में लाया जाए तो उन सभी रोगों का निवारक औषध बन जाता है।

निहन्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति।
अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि॥५७॥

रात को उष्ण जल पीने से वह कफसमूह को नष्ट कर देता है, वात का निवारण करता है तथा अजीर्ण को पचा देता है।

वर्षासु न जलं ग्राह्यं नादेयं बहुदोषकृत्।
शृतशीतं त्रिदोषघ्नं व्युषितं तच्च दोषकृत्॥५८॥

५८. तत्त्रिदोषकृत्–आ.।

वर्षा ऋतु में नादेय (नदियों का) जल नहीं लेना चाहिए, क्योंकि वह बहुत ही दोषकारक होता है। उबालकर शीतल किया जल त्रिदोषनाशक होता है, परन्तु यही यदि बासी हो जाए तो त्रिदोषकारक बन जाता है।

तत् पादहीनं वातघ्नमर्धहीनं च पित्तजित्।
कफे पादावशेषं तु पानीयं लघु दीपनम्॥५९॥

५९. तत् पादशोषं- आ.। लघु लेखनम्-आ.।

उबालने पर यदि जल का चतुर्थांश कम हो जाए तो ऐसा जल वातनाशक होता है। यदि आधा बचे तो पित्तनाशक तथा उबालने पर यदि चतुर्थांश ही जल बचे तो वह बढ़े कफ को दूर करने में बहुत उपयोगी होता है। यह जल लघु तथा लेखन (शरीर की चर्बी कम करने वाला) होता है।

दिवा श्रृतं च यत्तोयं रात्रौ तद् गुरुतां भजेत्।
रात्रौ श्रृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति॥६०॥

६०. 0भिगच्छति-.................। गुरुता0-ने., शृतं च-ने.।

दिन में उबालकर रखा हुआ पानी रात तक गुरुता (भारीपन) को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार रात को उबालकर रखा हुआ पानी भी प्रातःकाल तक गुरुता (भारीपन) को धारण कर लेता है। अतः इस जल का सेवन नहीं करना चाहिए।

शीतल जल निषेध-

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे।
आध्माने स्तिमिति कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे।
हिक्कायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत्॥६१॥

६१. सद्यः शुद्धे-ने.।

पार्श्वशूल (बगल का दर्द), प्रतिश्याय (जुकाम), वातरोग, गलग्रह (गला बैठने पर), आध्मान (गैस से पेट फूलने पर), कोष्ठबद्धता होने पर, वमन, विरेचन आदि द्वारा शरीर शुद्धि करने पर, नवीन ज्वर, हिचकी

होने पर, स्नेह (घृत आदि) का पान करने पर शीतल जल का त्याग कर देना चाहिए। अर्थात् उक्त स्थितियों में शीतल जल का सेवन हानिकर होने से निषिद्ध है।

गुल्मार्शोग्रहणीक्षये च जठरे मन्दानलाध्मानके
शोफे पाण्डुगलग्रहे व्रणगदे मोहे च पित्तामये।
वातारुच्यतिसारके कफयुते कुष्ठे प्रतिश्यायके
चोष्णं वारि सुशीतलं शृतहिमं स्वल्पं प्रदेयं जलम्॥६२॥

६२. क्षयाश्म.-अ. । नेत्रामये-ने.को.ला.। कफयुते-ने.को.। प्रपेयं-को.1।

गुल्म, अर्श, ग्रहणीरोग, क्षयरोग, उदररोग, मन्दाग्नि, आध्मान, शोफ (सूजन), पाण्डुरोग (पीलिया), गलग्रह (गला बैठना), व्रणगद (घाव), मोह (बेहोशी), नेत्ररोग, वातरोग, अरुचि, अतिसार, कफवृद्धि, कुष्ठ, प्रतिश्याय (जुकाम) आदि में गर्म करके ठण्डा किया हुआ जल अल्प मात्रा में देना चाहिए।

तप्तायःपिण्डसंयुक्तं लोष्ठनिर्वापितं जलम्।
सर्वदोषहरं पथ्यं सदा नैरुज्यकारकम्॥६३॥

६३. पिण्डसंयुक्तं-को.1 ने.। सर्वरोगहरं-ला.।

जिस जल में तपा हुआ लोहपिण्ड बुझाया गया हो अथवा गर्म पत्थर बुझाया गया हो, वह जल सर्वदोषहर, पथ्य व सदा आरोग्यकारक होता है।

निरामो भोजनादर्वाक् पिबेद्वारि सुशीतलम्।
अजीर्णे तु पिबेद्वारि शीतलं स्वेच्छया पुनः॥६४॥

आमदोष (आंव) से मुक्त व्यक्ति भोजन के अनन्तर सुशीतल जल पीवे। अजीर्ण होने पर तो उपवास के साथ जीभर शीतल जल पीते रहना चाहिए। इससे अजीर्ण का निवारण हो जाता है।

क्वचिदुष्णं क्वचिच्छीतं क्वचित्क्वथितशीतलम्।
क्वचिद्भेषजसंयुक्तं न क्वचिद् वारि वार्यते॥६५॥

कहीं उष्ण, कहीं शीतल तथा कहीं गर्म करके शीतल किए हुए जल का और कहीं औषधयुक्त जल का विधान किया जाता है। जल का

पूर्णतः निषेध तो कहीं (किसी भी अवस्था में) नहीं किया जाता है।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति।
तस्मात्स्वल्पं च दातव्यं न क्वचिद् वारि वार्यते॥६६॥

६६. प्रदातव्यं-ने., च दातव्यं-को.1 आ.।

पिपासाकुल व्यक्ति मोह (बेहोशी) को प्राप्त हो जाता है तथा उस अवस्था के देर तक रहने से वह प्राण छोड़ देता है। अतः जहाँ पानी का निषेध किया हो वहाँ (उस अवस्था में) भी थोड़ा पानी तो अवश्य देना चाहिए। क्योंकि जल का पूर्णतः निषेध कहीं भी उचित नहीं होता है।

पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव हि तन्मयम्।
अतोऽत्यन्तनिषेधेऽपि न क्वचिद् वारि वार्यते॥६७॥

६७. जगत्सर्वं तु-ने.। विश्वमेव हि-को.1 आ.।

पानी प्राणियों का प्राण है, प्राणस्थिति का कारण है। यह सकल जगत् जलमय ही है। अतः किसी अवस्था में जल का अत्यन्त निषेध होने पर भी पूर्णतः निषेध नहीं होता है क्योंकि पूर्ण निषेध होने पर प्राणरक्षण सम्भव नहीं।

मूर्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये।
भ्रमक्लमपरीतेषु तमके वारि शीतलम्॥६८॥

६८. मूर्छार्दितेषु दोषेषु-ने., मूर्छापित्तोष्णदाहेषु-आ.को.1।

मूर्छा (बेहोशी), पित्तवृद्धि, उष्णता, दाह (जलन), विष का प्रभाव होने पर, रक्तपित्त रोग तथा मदात्यय (नशा) हो जाने पर, चक्कर आने पर, थकान होने पर, तमक रोग में शीतल जल पीना चाहिए। ऐसा करने से तुरन्त राहत मिलती है।

पिबेद् घटसहस्राणि यावन्नास्तमितो रविः।
अस्तङ्गते दिवानाथे बिन्दुरेको घटायते॥६९॥

जब तक सूर्यास्त न हो तब तक भले ही घड़ों जल पिएं, कोई समस्या नहीं होती, परन्तु सूर्यास्त होने पर तो एक बिन्दु (बूंद) भी घड़े

जैसी भारी हो जाती है। भाव यह है कि रात में यथासम्भव जल नहीं पीना चाहिए। फिर भी बहुत आवश्यकता हो तो पी लें, क्योंकि जल का पूर्ण निषेध तो कहीं नहीं है, ऐसा पहले ही कह चुके हैं।

अजीर्णे चौषधं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि रात्रौ वारि विषोपमम्॥७०॥

७०. विषप्रदम्–को.आ.ला., विषोपमम्–ने.।

अजीर्ण (अपच) की स्थिति में भोजन न करके थोड़ा-थोड़ा जल पीते रहना चाहिए। इस प्रकार पिया गया जल अजीर्ण की औषध बन जाता है– अर्थात् ऐसा करने से अजीर्ण दूर हो जाता है। भोजन के जीर्ण हो जाने पर (पच जाने पर) जल पीना बलप्रद होता है। भोजन के मध्य में जल पीना अमृततुल्य है; क्योंकि भोजन के मध्य में आवश्यकतानुसार थोड़ा जल पीने या पेय लेने से भोजन का पाचन अच्छी तरह से होता है। रात को जल पीना विषतुल्य होता है, अर्थात् हानिकारक होता है। अतः रात को जल पीने से यथासम्भव बचना चाहिए।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं
निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनार्थं
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥७१॥

बहुत अधिक पानी पीने से भोजन नहीं पचता है तथा सर्वथा पानी न पीने से भी वही दोष होता है। अतः जठराग्नि को बढ़ाने के लिए मनुष्य को बार-बार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए।

क्षुधा संशुष्कहृत्कण्ठः प्रथमं कवलान् बहून्।
अभुक्ते प्रपिबेदम्बु शीतलं मात्रया युतम्॥७२॥

तेन हृत्कण्ठशुद्धिः स्यात्सुखेनान्नं पतत्यधः।
स्निग्धमुष्णं च यद्भुक्तं ततः सन्तर्पणं भवेत्॥७३॥

७२. क्षुधा संशुष्कहृत्कण्ठः–को.आ.ने., क्षुधार्त्तः शुष्कहृत्कण्ठः–अ.।
न भुंक्ते–को.आ.ला., अभुक्ते–ने.।

७३. पचत्यधः-अ., पतत्यधः-आ.को.ने.।
स्निग्धमुष्णं-आ., स्निग्धयुक्तं-ने., स्निग्धमुक्तं-को.।
सन्तर्पणं भजेत्-ला.।

भूख से व्याकुल जिस व्यक्ति के हृदय व कण्ठ सूख गए हैं, वह इस अवस्था में तुरन्त ही भोजन शुरु न करे, प्रत्युत पहले थोड़ी मात्रा में (दो तीन घूंट) शीतल जल पीवे।

ऐसा करने से उसके हृदय व कण्ठ की शुद्धि होती है, तथा अन्न सुखपूर्वक नीचे उतर जाता है, आमाशय में चला जाता है। तदनन्तर जो स्निग्ध (चिकनाई युक्त) व उष्ण भोजन किया जाता है, उससे मनुष्य का सन्तर्पण होता है।

आदौ द्रवं समश्नीयात्तत्राम्बु न पिबेद् बहु।
मध्ये तु कठिनं भुंक्ते यथेष्टं शस्यते जलम्॥७४॥

७४. शस्यते जलम्-को.आ.अ., वारि शस्यते-ने.।

आरम्भ में द्रवरूप भोज्य पदार्थ लेने चाहिए, उनके पीछे या साथ में अधिक जल न लें। भोजन के मध्य में कठिन (ठोस) भोज्य रोटी आदि लें, उनके साथ यथेष्ट जल/पेय द्रव्य ले सकते हैं, क्योंकि यदि कठिन भोज्य द्रव्यों के पीछे जल नहीं लेंगे तो आमाशय में उनका क्लेदन (गीलापन) व कोमलत्व नहीं होगा, इससे पाचन भी बाधित होगा। अतः भोजन के मध्य में लिए कठोर भोज्य पदार्थों के साथ जल या दही आदि द्रव लेना चाहिए।

तथैव भोजनस्यान्ते पीतमम्बु बलप्रदम्।
द्रव्यप्रधानभुक्तान्ते किन्तु तन्मात्रया पिबेत्॥७५॥

७५. द्रव्यप्रधाने भुक्तान्ते-ला.।

इसी प्रकार भोजन के अन्त में पिया गया जल बलप्रद होता है; परन्तु यदि भोजन द्रवप्रधान (तरल पदार्थों की अधिकता वाला) हो तो भोजन के अन्त में जल बहुत सीमित मात्रा में ही लेना चाहिए। अधिक जल लेने से पक्वाशयगत पाचक रस के निष्प्रभावी होने से भोजन-पाचन में बाधा

होती है।

आदौ द्रवं समश्नीयान्मध्ये तु कठिनाशनः।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति॥७६॥

मनुष्य को भोजन के आरम्भ में द्रव (तरल) भोज्य लेने चाहिए। मध्य में कठोर भोज्य लेने चाहिए तथा अन्त में पुनः छाछ, दूध या अन्य रुचिकर पेय लेना चाहिए। ऐसा करने पर बल व आरोग्य बने रहते हैं।

★ यह पद्य नेपाल से प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ में ही उपलब्ध हुआ है।

आदौ जलं वह्निविनाशकारि
कुर्यात्तदन्ते कफबृंहणं च।
मध्ये तु पीतं समतासुखं च
तस्यापि योगोऽभिमतः सकृच्च॥७७॥

७७. तस्यापि योगो-आ., तस्याभियोगो-को.ने.।
पश्चात् तदन्ते-ला.।

भोजन के आरम्भ में जल पीना जठराग्नि (भूख) को खत्म कर देता है। इसमें दो-तीन घूंट जल पीना अर्थात् आचमन करना तो हानिकर नहीं होता अपितु लाभ ही करता है। भोजन के अन्त में जल पीने से कफ बढ़ता है व शरीर में भारीपन आता है। भोजन के मध्य में जल पीने से समता की स्थिति रहती है, इससे शरीर सम (समुचित) अवस्था में रहता है; परन्तु भोजन के मध्य में जलपान का योग एक बार ही होना चाहिए, बार-बार नहीं।

अमृतं विषमिति सलिलं चेदं निगदन्ति विदिततत्त्वार्थाः।
युक्त्या सेवितममृतं विषमेतदयुक्तितः पीतम्॥७८॥

तत्त्वज्ञानी जन कहते हैं कि- जल ही अमृत है तथा वही विष भी बन जाता है। यदि उसका युक्ति (उचित विधि) से सेवन किया जाए तो अमृत है, अन्यथा विष बन जाता है।

पूरयेद्भागयुगलं कुक्षेरन्नेन सुस्थितः।
जलेनैकं चतुर्थं च वायुसञ्चारणाय वै॥७९॥

७९. कुक्षेश्चान्नेन-ने.को., कुक्षेरन्नेन-आ.।

स्वस्थ व्यक्ति को चाहिए कि वह पेट के दो भाग अन्न से तथा एक भाग जल से भरे, चौथे भाग को वायुसंचार के लिए खाली रखे।

ग्रासे ग्रासे तु पातव्यं शीतलं वारि सर्वदा।
बहुवारियुतं चान्नमग्निः पचति सत्वरम्॥८०॥

८०. सत्वरम्-आ.ने., सत्वरः-को.अ.।

भोजन में प्रत्येक ग्रास के साथ थोड़ा-थोड़ा छाछ या दूध जैसा जलबहुल पदार्थ लिया जा सकता है। क्योंकि जलबहुल भोज्य को जठराग्नि शीघ्र ही पचा देती है।

तस्मादादावतिस्वल्पं मध्ये च तृप्तिदायकम्।
मात्रया च पिबेदन्ते न रोगैर्बाध्यते नरः॥८१॥

८१. च तृप्तिदायकम्-आ.को., तृप्तिप्रदायकम्-ने.अ.।
च पिबेदन्ते-को.आ.ने, मात्रयाम्बु पिबेदन्ते-अ.। मात्रायां च-ला.।

इसलिए भोजन के प्रारम्भ में अतिस्वल्प अर्थात् आचमन के रूप में जल पीना चाहिए। भोजन के मध्य में तो तृप्तिपूर्वक जल पिया जा सकता है। परन्तु अन्त में थोड़ी मात्रा में जल पीना चाहिए। इस प्रकार करने से व्यक्ति रोगों से पीड़ित नहीं होता है।

वासितं नूतनैः पुष्पैः पाटलीचम्पकादिभिः।
पथ्यं सुगन्धि हृद्यं च शीतलाम्बु सदा पिबेत्॥८२॥

८२. पाटलीचम्पका-आ.को., पाटलैश्चम्पका-अ., पाटलाचम्पका-ने.।

पाटली चम्पक आदि के नये ताजे पुष्पों द्वारा सुगन्धित किए हुए पथ्य, सुगन्धित, हृद्य व शीतल जल का सदा सेवन करना चाहिए।

सुगन्धि पाटलीपुष्पं चम्पकैरधिवासितम्।
कर्पूरेण च यत्तोयं तत्पथ्यं सर्वदा नृणाम्॥८३॥

सुन्दर गन्धयुक्त पाटली, चम्पक आदि पुष्पों तथा कपूर से सुवासित जो जल है, वह सर्वदा मनुष्यों के लिए हितकर होता है।

✶ यह पद्य अ. तथा ने. हस्तलेखों में उपलब्ध नहीं है। को. में इसके

पूर्वार्द्ध का स्वरूप भिन्न है– सुगन्धमृत्सटावालासकलैरधिवासितम्। सुगन्धमृसरावाला०–ला.।

ग्रीष्मे शरदि पातव्यं स्वेच्छया सलिलं नरैः।
अन्यदा स्वल्पमेवैतद्वातश्लेष्मभयात् पिबेत्॥८४॥

८४. कल्पमे०–ने., स्वल्पमे०–को.आ.अ., त्वल्पमे० इति स्यात्।

ग्रीष्म व शरद् ऋतु में मनुष्यों को जीभरकर पानी पीना चाहिए। अन्य ऋतुओं में तो वात एवं कफ के भय से कुछ कम पानी पीना चाहिए। भाव यह है कि अन्य ऋतुओं में अधिक मात्रा में पानी पीने से वात व कफ बढ़ सकता है, अतः कुछ कम मात्रा में पीना चाहिए।

अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्सन्धारयेच्चिरम्।
तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात् प्राणैर्विमुच्यते॥८५॥

८५. चिरम्–आ., ध्रुवम्–अ.। अन्नेनापि विना–को.अ.आ., अनेन विधिना–ने.।

प्राणी अन्न के बिना भी चिरकाल तक प्राण धारण कर सकता है, अर्थात् कुछ दिन तक जीवित रह सकता है, परन्तु जल के अभाव में तो प्यास से व्याकुल प्राणी शीघ्र ही प्राणों से वियुक्त हो जाता है, मर जाता है। इसीलिए कहा जाता है– जल ही जीवन है, अर्थात् जीवन का आधार है।

आदिमध्यावसाने तु भोजने पयसा युते।
कृशं साम्यं तथा स्थौल्यं भवन्ति क्रमशो गुणाः॥८६॥

८६. 0साने तु–आ.अ., 0साने च–ने.को.ला.।

भोजन के आदि (आरम्भ में), मध्य व अन्त में जल पीने से क्रमशः कृशता, समता व स्थूलता के गुण होते हैं। भोजन के आरम्भ में जल पीने से भूख मन्द हो जाती है; अतः अन्न का पाचन न होने से कृशता आती है। भोजन के मध्य में जल पीने से शरीर में समता रहती है, अर्थात् न कृशता आती है और न ही स्थूलता। भोजन के अन्त में जल पीने से कफ की वृद्धि के कारण स्थूलता आती है।

पानीयं पानीयं शरदि वसन्ते च पानीयम्।
नादेयं नादेयं शरदि वसन्ते च नादेयम्॥८७॥

शरद् एवं वसन्त ऋतु में यथेष्ट पानी पीना चाहिए; परन्तु इन ऋतुओं में नादेय (नदियों का) जल नहीं पीना चाहिए।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ श्रीसुषेणकृते पानीयगुणाः ।।

अथ जलाधिवासनविधिः

उशीरमांसी सकचूर एला मूला-ना
लवङ्गकंकोलसवारि कुष्ठम्।
हरीतकी गन्धसमं च भागं गन्धसमानभागं-ना.
जलाधिवासाः पृथिवीश्वराणाम्।।१।।

उशीर मांसी, कचूर, एला (इलायची), लवंग (लौंग), कंकोल, ... कूठ, हरीतकी व गन्धसम ये जलाधिवास (जल को सुगन्धित करने वाले पदार्थ हैं) जो राजाओं अथवा श्रीमन्तों के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

मांसीचन्दनवालकद्वययुतं भागद्वयं स्यात्ततो
धात्रीजातिवतीलवङ्गसहितं भागार्धजातीफलम्। शिवादि-ना.
कंकोलं च तमालपत्रत्रुटिभिर्मुस्तासकर्पूरकैः
एतैर्वल्लिचतुष्ककुष्ठसहितं भागं तु सार्धं भवेत्।।२।।
वाल-ना.

मांसी, चन्दन, दोनों प्रकार की वालुका, आंवला, जाती, लवंग, कंकोल, तमालपत्र, इलायची, मुस्ता, कपूर, वल्लचतुष्क, कूठ ....

श्यामाकेसरचन्दनैः सह पृथक् भागैकसम्मिश्रितैः।
कुर्याच्चैव जलाधिवासमनिशं श्रीराजयोग्यं सदा।।३।।

३. कृत्वा चैव-ला.। श्रीरामयोग्यं-ला.।

श्यामा, केसर व चन्दन के द्वारा भी राजाओं के योग्य जलाधिवासन किया जाता है।

उशीरधात्रीद्रविडासकुष्ठैः
सचन्दनैश्चोरकजातिपुष्पैः।

वरांगमुस्तैः सहपाटलैश्च
कर्पूरजात्येह जलाधिवासः॥४॥

उशीर (खस), धात्री (आंवला), द्रविडा (इलायची), कूठ, चन्दन, चोरक, जातिपुष्प, वरांग (तज), मुस्त, पाटल, कपूर व जातिफल के द्वारा जलाधिवासन होता है।

परिपेलवया तुल्या रालगुग्गुलमुस्तकैः।
चूर्णिता सितयोपेता वारिभाजनधूपनम्॥५॥

परिपेलवया तुल्या लघुगुग्गुलसंयुतैः। चूर्णिता सितयोपेता वारिभाजनधूपनैः॥ कुष्ठमुस्तकसंयुक्तैः रेलयोशीरचन्दनैः। मृदिता मृत्सु पिष्टैस्तैः खदिरांगरपाचितैः॥ सहकाररसाभ्यक्तैश्चम्पकोत्पलपाटलैः। पद्मकुष्ठककुन्दैश्च पथ्यं कालाधिवासितम्॥ -ज. २। एला एलवया-...., रालगुग्गुल-आ.।

५. लघुगुग्गुलमुस्तकैः-ला.।

परिपेलव (जलमुस्ता), राल (सर्जरस), गुग्गल व मुस्ता के साथ तैयार किया जाए, इसमें कुछ शर्करा मिलाई जाए। इस प्रकार यह जलपात्र को शुद्ध व सुगन्धित करने वाला योग है।

कुष्ठमुस्तकसंयुक्तैः एलवोशीरचन्दनैः।
मृदिता मृत्सु पिण्डैस्तैः खदिरांगारपाचितैः॥६॥

६. पिष्टैस्तैः-ज.२, एलयोशीर०-ला.।

सहकाररसाभ्यक्तैश्चम्पकोत्पलपाटलैः।
पद्मकुष्ठककुन्दैश्च पुष्पकालाधिवासितः।
श्रेष्ठः सलिलवासोऽयं स्मृतः सर्वर्तुको बुधैः॥७॥

७. पथ्याकाल०-ला.।

कूठ, मुस्तक, एलवा, उशीर, चन्दन इन्हें मिट्टी में मसलकर पिण्ड बनाएं तथा खदिर के अंगारों से पकाएं।

आम के रस से युक्त चम्पक, नीलकमल व पाटल, पद्म, कुष्ठक, कुन्द पुष्पों से जल को सुगन्धित करना चाहिए। यह सब ऋतुओं में उपयोगी जलाधिवासन है, ऐसा विद्वानों का मत है।

लवङ्गोशीर-कंकोल-कान्ता-नलद-चन्दनैः।
सलिलामलकंकोल-पथ्या-कर्चूर-संयुतैः।।८।।

८. सलिलामयकं-ला.।

विचूर्णितैः समैरेभिः सुशीतामलवारिणा।
अधिवासनमिच्छन्ति श्रेष्ठं सर्वर्तुकं बुधाः।।९।।

लवंग (लौंग), उशीर (खस), कंकोल, कान्ता, नलद,, चन्दन, पानी आंवला, कंकोल, पथ्या (हरड़), कर्चूर- इनको एक साथ मिलाकर चूर्ण करके शीतल जल में डालने से जल का अधिवासन अर्थात् शोधन व उत्तम गन्ध हो जाती है। यह जलाधिवासन सभी ॠतुओं में उपयोगी होता है।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते जलाधिवासनविधिः।।

जलाधिवासस्य विधिः-ला.।

क्षीरवर्गः

इदानीं क्षीरगुणाः कथ्यन्ते। तत्रापि गव्यमाहिषयोरेव सदोपयोगित्वादुभयोरेव स्वरूपं विचार्यते। अथ गोक्षीरम्-

योगित्वात् तयोरेव-ला.।

गव्यं हितं मेध्यतमं हि दुग्धं
प्राणप्रदं पित्तसमीरणघ्नम्।
रसायनं वर्णकरं सुकेश्य-
मारोग्यहेतुः सततं नराणाम्।।१।।

गाय का दूध हितकर, अतीव मेध्य, प्राणप्रद, पित्तवातनाशक, रसायन वर्णप्रसाद (रंग में निखार) करने वाला, केशों के लिए अति हितकारी व मनुष्यों के लिए सदा आरोग्यकारक होता है।

क्षीरं साक्षाज्जीवनं जन्मसात्म्या-
त्तद्धारोष्णं गव्यमायुष्यबल्यम्।
प्रातः सायं ग्राम्यधर्मावसाने
भुक्तेः पश्चादात्मसात्म्यं करोति।।२।।

२. गव्यमायुष्यमुक्तम्-ला.।

दूध जन्म से ही स्तन्यपायी प्राणियों के लिए सात्म्य होता है। अतः यह उनके लिए साक्षात् जीवन है, अर्थात् जीवन का आधार है। गाय का धारोष्ण दूध दीर्घायुष्यकारक व बलकारक माना गया है। प्रातः व सायं इसका पान करना चाहिए। ग्राम्यधर्म (मैथुन) के अनन्तर भी दुग्धपान करना चाहिए। भोजन के पश्चात् भी दुग्धपान उपयोगी होता है। इससे वह भोजन को आत्मसात्म्य कर देता है, शरीर के अनुकूल बना देता है व उसके पाचन में सहायक होता है।

शीतलं मधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम्।
वृष्यमोजस्करं हृद्यं श्लेष्मलं च रसायनम्॥३॥

३. पित्तहरं परम्-ला.।

गाय का दूध शीतल, मधुर, स्निग्ध, वातपित्तहर व सर (दस्तावर) होता है। यह वृष्य, ओजस्कर, हृद्य, कफवर्द्धक एवं रसायन होता है।

पाके स्वादु रसे मेध्यं क्षतक्षीणबलप्रदम्।
श्वासकासप्रशमनं श्रमभ्रममदापहम्॥४॥

४. क्षयक्षीणे-ला.।

गाय का दूध पाक व रस में मधुर, मेध्य, क्षतक्षीण के लिए बलप्रद होता है। यह श्वास (दमा), कास (खांसी) को शान्त करता है तथा थकान, चक्कर आना व नशे के असर को दूर करता है।

जीर्णज्वरे मूत्रकृच्छ्रे रक्तपित्ते च शस्यते।
गव्यं पयः पवित्रं च बल्यं पुष्टिप्रदायकम्।
श्रेष्ठं चक्षुष्यमायुष्यं कान्तिलावण्यकारकम्॥५॥

५. पुष्टिप्रकारकम्-ला.। च वृष्यमायुष्यं-आ.।

जीर्णज्वर (पुराने बुखार), मूत्रकृच्छ्र व रक्तपित्त में गाय का दूध बहुत उत्तम होता है। यह पवित्र, बल्य व पुष्टिकारक होता है। गाय का दूध श्रेष्ठ वृष्य, आयुष्य तथा कान्तिलावण्यकारक होता है।

॥ इति गोक्षीरम् ॥

अथ माहिषक्षीरम्

माहिषं बलवर्णौजोनिद्राशुक्रकफप्रदम्।
तीक्ष्णाग्निशमनं स्वादु रसे पाके च पुष्टिदम्॥६॥

६. बलप्रदम्-ला.।

माहिष क्षीर (भैंस का दूध) बल, वर्ण व ओज बढ़ाने वाला, अधिक नींद लाने वाला तथा शुक्र व कफ बढ़ाता है। यह तीव्र जठराग्नि को शान्त करने वाला रस व विपाक में मधुर एवं पुष्टिकारक होता है।

दुर्जरं पित्तहृत् स्वादु कफवातकरं परम्।
व्यायामश्रान्तदेहस्य श्रमघ्नमनिलापहम्॥७॥

भैंस का दूध दुर्जर (देर से पचने वाला), पित्तहर, मधुर, अत्यधिक कफवातवर्द्धक होता है। यह व्यायाम से थके शरीर वाले व्यक्ति की थकान दूर करने वाला व वातविकारों का निवारक होता है।

निष्कामस्यातिवृद्धस्य स्त्रीषु कामप्रदायकम्।
बलिनस्तरुणस्यापि विशेषात्कामदायकम्॥८॥

भैंस का दूध अत्यन्त शुक्रवर्द्धक होने से वृद्ध व्यक्ति की भी रतिशक्ति को बढ़ा देता है। तरुण (युवा) एवं बलवान् व्यक्तियों की कामशक्ति को तो यह विशेष रूप से बढ़ा देता है।

॥ इति माहिषक्षीरम् ॥

अथ अजाक्षीरम्

अजानामल्पकायत्वात् कटु-तिक्त-निषेवणात्।
नात्यम्बुपानाद् व्यायामात् सर्वव्याधिहरं पयः॥९॥

बकरियों के लघुकाय होने से उनका घूमना-फिरना व उछलकूद आदि व्यायाम होता रहता है। वे अधिक जल नहीं पीती हैं तथा कटु (चरपरे) व तिक्त (कड़वे) पत्ते आदि खाती हैं, अतः बकरियों का दूध सर्वरोगनाशक होता है। आयुर्वेद के अनुसार- 'आरोग्यं कटुतिक्तेषु' कटु व तिक्त पदार्थों में अरोग्य प्रतिष्ठित होता है। इसलिए भी बकरियों का

दूध विशेषरूप से आरोग्यकारक माना जाता है।

आजमग्निबलकृत्क्षयकास-
श्वासहानिलहरं परमं तत्।
रक्तपित्तहरमाश्वतिसारे
बृंहणे च विहितं हितमेव॥१०॥

बकरी का दूध जठराग्निवर्द्धक, विशेष रूप से क्षय रोग को नष्ट करने वाला, कास (खांसी), श्वास (दमा) को दूर करने वाला तथा परम वातनाशक होता है। यह रक्तपित्त-निवारक एवं अतिसार (दस्त) में शीघ्र लाभदायक होता है। दुर्बल व्यक्ति के शरीर को पुष्ट करने के लिए भी यह बहुत उपयोगी होता है।

यहां बकरी के दूध को विशेष रूप से क्षयरोगनाशक बताया है। चरकसंहितादि मूलग्रन्थों में भी बकरी के दूध की यह विशेषता विशेषरूप से वर्णित है। आधुनिक अनुसन्धान से भी यह प्रमाणित हुआ है कि बकरी के दूध में क्षयरोग के जीवाणु नहीं होते हैं। प्राचीन आयुर्वेद-मनीषियों को यह तथ्य सुविदित था, अतएव पुराने समय में क्षयरोग वाले व्यक्ति को बकरियों के मध्य में रखा जाता था व उन्हीं के दूध पीने की व्यवस्था की जाती थी। संस्कृत में यह वाक्य प्रसिद्ध है- **'अजधेनुभिः सह समावसेत् क्षयी'** (मंखकोष, टीकाभाग-452) अर्थात् क्षयरोगी को अजधेनु अर्थात् दूध देने वाली बकरियों के साथ रहना चाहिए।

बकरी के दूध को सर्वरोगहर बताने के पीछे एक कारण यह भी है कि यह बहुत सुपच होता है तथा शिशु एवं दुर्बल भी इसको आसानी से पचा लेते हैं। इसीलिए चरकसंहिता में कहा है कि माता के दूध की समता करने वाले व क्षयरोग का निवारण करने वाले सभी पदार्थों में बकरी का दूध सर्वोत्कृष्ट होता है। अतः पुराने समय में जिस बच्चे की माँ मर जाती थी, उसे बकरी का दूध पिलाया जाता था, इससे बच्चा स्वस्थ रहता था। बच्चे के लिए गाय या भैंस का दूध अनुकूल नहीं होता है; क्योंकि उसमें वसा (चिकनाई) के कण बड़े व भारी होते हैं, जो बच्चे की भूख को मन्द कर देते हैं। जबकि बकरी के दूध में विद्यमान

वसा-कण ठीक माता के दूध के समान होते हैं, अतः भारत में मातृस्तन्य के अभाव में बकरी का दूध पिलाने का चलन रहा है।

।। इत्यजाक्षीरम् ।।

अथोष्ट्रीक्षीरम्

उष्ट्रीक्षीरं सुप्तिशोफापहं तद्
वातश्लेष्मार्शोविषेषु प्रशस्तम्।
आनाहघ्नं चोदराणां च शस्तं
जन्तुघ्नं वै शस्यते सर्वकालम्॥११॥

१९. पित्तश्लेष्माद्यर्शषां च प्रदिष्टम्-ला.।

ऊँटनी का दूध सुप्ति (पैर आदि के सोने/सुन्न होने) के विकार तथा सूजन को दूर करता है। यह वातकफ-नाशक तथा अर्श एवं विषविकार में उत्तम होता है। ऊँटनी का दूध आनाह-नाशक व उदरविकारों में लाभप्रद माना जाता है। यह कृमिनाशक होता है तथा सर्वकाल (सदा) पिया जा सकता है।

राजस्थान में उष्ट्रपालक रैबारी जाति के लोग ऊँटनी के दूध का दैनिक प्रयोग करते हैं।

।। इति उष्ट्रीक्षीरम् ।।

अथ आविक्षीरम्

आविकं मधुरं स्निग्धं गुरु पित्तकफप्रदम्।
पथ्यं केवलवातेषु श्वासे चानिलसम्भवे॥१२॥

भेड़ का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु व पित्तकफकारक होता है। केवल वातरोग में यह विशेष रूप से पथ्य होता है तथा वातजन्य श्वास (दमा) में भी बहुत उपयोगी होता है।

।। इति आविक्षीरम् ।।

अथ खराश्वक्षीरम्

उष्णमैकशफं बल्यं श्वासवातहरं पयः।

मधुराम्लरसं रूक्षं लवणानुरसं लघु॥१३॥

१३. श्वासवातापहं-ला.।

एक खुर वाले पशु घोड़ी आदि का दूध उष्ण, बलकारक व श्वास (दमा) तथा वातनाशक होता है। यह रूक्ष, लघु, मधुर व अम्लरस वाला होता है तथा अनुरस में कुछ खारापन लिए रहता है और लघु होता है।

।। इति खराश्वक्षीरम् ।।

अथ स्त्रीक्षीरम्

नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम्।
नस्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम्॥१४॥

नारी का स्तन्य (दूध) मधुर कषायानुरस व शीतल होता है। यह नस्य (नाक में डालने) व आश्च्योतन (आँख में डालने) के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है तथा पथ्य, लघु, दीपन व जीवनदायक होता है।

।। इति स्त्रीक्षीरम् ।।

स्त्रीस्तन्यम्-ला.।

अथ हस्तिनिक्षीरम्

हस्तिन्या मधुरं वृष्यं कषायानुरसं गुरु।
स्निग्धं स्थैर्यकरं शीतं चक्षुष्यं बलवर्धनम्॥१५॥

हथिनी का दूध मधुर, वृष्य, कषायानुरस व गुरु होता है। यह स्निग्ध, स्थैर्यकर (दृढ़ता लाने वाला), शीतल, नेत्रहितकारी व बलवर्द्धक होता है।

।। इति हस्तिनिक्षीरम् ।।

हस्तिनीस्तन्यम्-ला.।

अथ दुग्धसामान्यगुणाः

पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्तितम्।
तदेवोक्तं लघुतरमनभिष्यन्दि वै शृतम्॥१६॥

१६. तदेवातिशृतं विद्याद् गुरुतर्पणबृंहणम्-ला.।

प्रायः सभी प्रकार का दूध कच्चा होने पर अभिष्यन्दी व गुरु होता

है। वही पकाने पर (उबालने पर) लघुतर व अनभिष्यन्दी हो जाता है।

रस आदि धातुओं का वहन करने वाले/शरीर में संचार करने वाले, सिरा आदि स्रोतों में अवरोध पैदा करने वाले पदार्थ को अभिष्यन्दी कहते हैं। इसका मुख्य उदाहरण दही है। रात को प्रयोग करने पर दही बहुत अभिष्यन्दी बन जाता है, अर्थात् रसरक्तवहा सिराओं में जकड़न व अवरोध पैदा कर देता है। अतः रात को दही खाना निषिद्ध है। ग्रामीण परम्परा में आज भी कोई रात को दही नहीं खाता है, परन्तु इस परम्परा से अनभिज्ञ व पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करने वाले शहरी लोग रात को भी दही खाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सकों की देखरेख में आधुनिक चिकित्सालयों में रोगियों के भोजन में रात को दही दिया जाता है। यह अजीब मूर्खतापूर्ण चलन है।

प्रस्तुत पद्य में कच्चे दूध को भी अभिष्यन्दी बताया है। अतः उबालकर दूध का प्रयोग करना ही हितकर होता है।

वर्जयित्वा स्त्रियः स्तन्यमाममेव हि तद्धितम्।
धारोष्णं गुणवत्क्षीरं विपरीतमतोऽन्यथा॥१७॥

१७. धारोष्णममृतं क्षीरं- ला.।

पूर्व श्लोक में कच्चे दूध को अभिष्यन्दी कहते हुए हानिकारक बताया है, परन्तु वह उपर्युक्त निर्देश नारीदुग्ध को छोड़कर ही लागू होता है। नारी का दूध तो कच्चा धारोष्ण अवस्था में ही उपयोगी होता है। इसके विपरीत स्थिति में उसकी गुणवत्ता नष्ट हो जाती है।

अनिष्टगन्धमम्लं च विवर्णं विरसं च यत्।
वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च विग्रथितं भवेत्॥१८॥

जो दूध अनिष्ट (अवांछित/बुरी) गन्ध से युक्त, अम्ल (खट्टा), विवर्ण (बदरंग), विरस (स्वादहीन या विकृत स्वाद वाला) होता है, वह त्याज्य है। लवण मिला दूध तथा फटा हुआ दूध भी सेवन योग्य नहीं होता है।

धारोष्णममृतं पथ्यं धाराशीतं त्रिदोषकृत्।
शृतशीतं तु पित्तघ्नं शृतोष्णं कफवातजित्॥१९॥

धारोष्ण (दोहन के तुरन्त बाद स्वाभाविक उष्ण अवस्था वाला) दूध अमृततुल्य व पथ्य होता है। धाराशीत (दोहन के बाद शीतल हुआ) दूध त्रिदोषकारक होता है। शृतशीत (उबालकर शीतल किया हुआ) पित्तनाशक होता है तथा उबालने के बाद गर्म अवस्था में पिया जाने वाला दूध कफवातहर होता है।

अथाविकं पथ्यतमं शृतोष्णम्
आजं पयो वा शृतशीतमेव।
धारासुशीतं महिषीपयश्च
धारोष्णमेवं हितमेव गव्यम्॥२०॥

भेड़ का दूध शृतोष्ण (उबालने के बाद गर्म अवस्था में) ही हितकर होता है। बकरी का दूध शृतशीत (उबालकर शीतल किया हुआ) ही पथ्य होता है। भैंस का दूध धाराशीत (दुहने के बाद शीतल हुआ) पथ्य होता है। गाय का दूध धारोष्ण अवस्था में पथ्य माना जाता है।

पित्तघ्नं माहिषं क्षीरं वातघ्नमाविकं पयः।
वातपित्तहरं गव्यं त्रिदोषघ्नमजापयः॥२१॥

भैंस का दूध मुख्य रूप से पित्तनाशक, भेड़ का दूध मुख्य रूप से वातनाशक, गाय का दूध मुख्य रूप से वापपित्तनाशक होता है। बकरी का दूध त्रिदोषनाशक होता है।

रात्रौ सौम्यगुणत्वाच्च व्यायामाभावतस्तथा।
प्रायः प्राभातिकं क्षीरं गुरुविष्टम्भि बृंहणम्॥२२॥

२२. रात्र्यां-ला.। विष्टम्भि शीतलम्-ला.।

रात्रि में सौम्य (शीतल) गुण की प्रधानता तथा पशुओं के विश्रामरत होने से व्यायाम के अभाव के कारण प्रायः प्रातःकाल का दूध गुरु, विष्टम्भी (उदर में वात का अवरोधक), व बृंहण (पुष्टिकारक) होता है।

दिवाकराभिसन्तापाद् व्यायामानिलसेवनात्।
वातपित्तश्रमघ्नं च चक्षुष्यं चापराह्णिकम्॥२३॥

दिन में सूर्य के सन्ताप के कारण तथा व्यायाम व वायु का सेवन

करने के कारण पशुओं का सायंकालीन दूध वातपित्त व श्रम (थकान) को दूर करने वाला एवं नेत्रहितकारी होता है।

वृष्यं बृंहणमग्निवर्धनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने बलवर्धनं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
बालेष्वग्निकरं क्षये बलकरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ क्षीरमनेकदोषशमनं सेव्यं सदा प्राणिनाम्॥२४॥

२४. अग्निवृद्धिजननं-ला.। बलदायकं रतिकरं कृच्छ्राश्मरीक्षोदनं-ला.। क्षये क्षयकरं-ला.।

पूर्वाह्णकाल में पिया गया दूध वृष्य, बृंहण व जठराग्निवर्द्धक होता है। मध्याह्नकाल में पिया गया दूध बलवर्द्धक, कफहर, पित्तनिवारक व अग्निदीपन होता है। दूध के सेवन से बालकों की जठराग्नि सबल रहती है। क्षयरोग अथवा क्षीणता की अवस्था में दूध बलवर्द्धक होता है। दुग्ध सेवन से वृद्धों में भी शुक्रवृद्धि होती है। रात को दूध के सेवन से अम्लता, दाह (पेट की जलन) आदि अनेक दोषों का शमन होता है, अतः नित्य दूध का सेवन करना चाहिए।

भुक्ता ये बहुतीव्रचण्डविदला ये चाम्लतिक्ता रसा
रूक्षा क्षारविदाहशोषणकरा ये चातितापप्रदाः।
काषायाः कटुतीक्ष्णदुर्जरतराः संसेविता येऽहिताः
तत्सर्वं परिपाकमेति तरसा दुग्धे निशासेविते॥२५॥

२५. शोषकपरा-ला.। कटुरूक्ष०-ला.। संसेव्यमाना.......-ला.। तत्सर्वं बलकृत्करोति दुग्धं निशासेवितम्-ला.।

दिन में बहुत तीव्र मसाले आदि से युक्त, अम्लता पैदा करने वाली दाल आदि जो वस्तुएं खाई जाती हैं तथा जो अम्ल व तिक्त (कडवे) रस वाले भोज्य लिए जाते हैं, जो रूखे, खारे, विदाहकर, शुष्कताकारक एवं अतिसन्तापजनक भोज्य लिए जाते हैं, जो कषाय (कषैले), कटु (चरपरे), तीक्ष्ण (तीखे) व दुर्जर (पचने में भारी) भोज्य सेवित किए जाते हैं, रात को दूध पीने से वे सब अच्छी प्रकार से पच जाते हैं। अतः रात को दूध का सेवन बहुत उपयोगी माना गया है।

मुहूर्तपञ्चकादूर्ध्वं क्षीरं भजति विक्रियाम्।
तदेव द्विगुणे काले विषवद्धन्ति मानवम्॥२६॥

दोहन करने पर पाँच मुहूर्त्त के अनन्तर दूध विकृत हो जाता है। इससे दुगुने काल में तो यह इतना विकृत हो जाता है कि विषतुल्य बनकर मारक हो जाता है। एक मुहूर्त्त ४८ मिनिट का होता है।

अक्वथितं दश घटिका क्वथितं द्विगुणाश्च ताः पयः पथ्यम्।
अथ वा मधुररसाढ्यं यावत्तावत् पयः पथ्यम्॥२७॥

बिना उबाला दूध दस घटिका तक ठीक रहता है। उबालने पर वह बीस घटिका तक ठीक रहता है अथवा यह समझना चाहिए कि जब तक दूध में मधुरता बनी रहती है, खट्टापन व विरसता नहीं आती, तब तक वह पथ्य होता है। एक घटिका २४ मिनिट की होती है।

तस्माच्छृतं चाप्यशृतं पयस्तात्कालिकं पिबेत्।
चतुर्भागजलं दत्वा यत्तदावर्त्तितं पयः॥२८॥

इसलिए शृत या अशृत दूध को तत्काल ही पी लेना चाहिए, अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए, क्योंकि देर तक रखने से दूध विकृत हो जाता है। दूध में चतुर्थांश जल मिलाकर उबाल लिया जाय तो यह आवर्तित (औटाया हुआ) दूध कहलाता है। यह लघु व पथ्य माना जाता है।

दद्यात्तद् बलकश्रेष्ठं हितं सर्वरुजापहम्।
जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्॥२९॥

आवर्तित (चतुर्थांश जल मिलाकर औटाया हुआ) दूध श्रेष्ठ, बलप्रद, हितकर व सर्वरोगहर होता है। जीर्णज्वर (पुराने बुखार), कफक्षीणता में यह दूध अमृततुल्य होता है। वही दूध यदि नये ज्वर में पिया जाये तो विषतुल्य मारक बन जाता है।

येषां न सात्म्यं क्षीरेण पीतं चाध्मानकारकम्।
तेषामर्द्धजलं दत्वा नागरं पिप्पलीयुतम्।

आवर्तयेत् क्षीरशेषं तत्पीत्वा सुखमाप्नुयात्॥३०॥

जिन्हें दूध सात्म्य (अनुकूल) नहीं होता तथा पीने पर आध्मान (गैस के कारण पेट में तनाव) करता है, उन्हें पिप्पली (पीपल) व नागर (सौंठ) के साथ आधा पानी मिलाकर औटाया हुआ दूध देना चाहिए। इसे तब तक औटाना चाहिए जब दूध मात्र शेष रह जाये। यह सुखपूर्वक पच जाता है तथा आध्मान का कष्ट भी नहीं होता है।

पूर्वाह्णे प्रपिबेद् गव्यमपराह्णे तु माहिषम्।
सशार्करं स्वेच्छया वा येन सात्म्यं सदा भवेत्॥३१॥

३१. सशर्करां स्वेच्छया वा येषां-ला.।

पूर्वाह्ण में गाय का व अपराह्ण में भैंस का दूध उत्तम होता है। दूध में शर्करा मिलाकर भी पिया जा सकता है अथवा जिसको जैसा सात्म्य हो उस प्रकार वही दूध पीना चाहिए।

नादौ मध्ये न च ग्रासे ग्रासस्यान्ते कदाचन।
सर्वभोजनशेषे तु पयः पेयं सदा नरैः॥३२॥

३२. सर्वे तन्मानशेषे-अ.आ.को.जो.ला., सर्वभोजनशेषे तु-उ.ना.।
न वा ग्रासे-ला.।

भोजन के आदि में, मध्य में तथा ग्रास के साथ या ग्रास के अन्त में कभी दूध नहीं पीना चाहिए। पूर्ण भोजन होने के उपरान्त तो सदा दूध पीना चाहिए।

पित्तघ्नं शृतशीतलं कफहरं पक्वं कदुष्णं पुनः
शीतं यद्घनपाचितं तदखिलं विष्टम्भि दोषापहम्।
धारोष्णं त्वमृतं पयः श्रमहरं निद्राकरं कान्तिदं
वृष्यं बृंहणमग्निवर्धनमतिस्वादु त्रिदोषापहम्॥३३॥

३३. तदुष्णम्-अ.आ.ला., कदुष्णम्-ना.। शीतं सत्-ला.।
विष्टम्भदोषापहम्-ला.।

शृत शीतल दुग्ध पित्तनाशक होता है। उष्ण/कदुष्ण अवस्था में पिया गया दूध कफहर होता है। बहुत अधिक पकाकर गाढ़ा बनाया हुआ तथा

शीतल किया हुआ दूध विष्टम्भी व दोषनिवारक होता है। धारोष्ण दूध अमृत होता है। यह थकान दूर करता है, नींद लाता है तथा कान्ति प्रदान करता है। धारोष्ण दूध वृष्य, बृंहण, अग्निवर्द्धक, अतिस्वादु व त्रिदोषनिवारक होता है।

क्षीरं भक्तं न भुञ्जीत गोधूमान्नेन नैव हि।
पिष्टान्नेनापि नाश्नीयान्न दध्ना लवणेन वा॥३४॥

३४. गोधूमान्नेन मानवः-ला.।

दूध और भात एक साथ नहीं खाना चाहिए। गोधूमान्न (गेंहू की रोटी आदि) के साथ भी दूध नहीं लेना चाहिए। पिष्टान्न (आटे से बने अन्य भोज्य पदार्थों) के साथ भी दूध नहीं लेना चाहिए। दही व लवण के साथ भी दूध का सेवन नहीं करना चाहिए।

न माषैर्न च मुद्‍गैर्वा न गुडेन फलेन वा।
भूकन्दैर्न च शाकैश्च मत्स्यमांसादिभिर्न च॥३५॥

माष (उड़द) व मूंग के साथ दूध नहीं लेना चाहिए। गुड़ व (खट्टे) फलों के साथ दूध नहीं लेना चाहिए। भूकन्द (..........) व शाकों के साथ भी दूध नहीं लेना चाहिए। मछली तथा मांस आदि के साथ भी दूध लेना उचित नहीं है।

पायसं भक्षयेद्युक्त्या तत्पक्वं हि समं पिबेत्।
वृष्यं हृद्यं च पथ्यं च तत्पीत्वानिलनाशनम्॥३६॥

खीर को युक्तिपूर्वक खाना चाहिए। पकी व घुटी हुई पतली खीर को धीरे- धीरे पीना चाहिए। खीर वृष्य, हृद्य व पथ्य होती है। इसके पीने से वात का नाश होता है।

स्निग्धत्वाद् गौरवाज्जाड्यात्त्रिकालं न पिबेत्पयः।
समाग्निरपि किं चान्ये मन्दाग्निर्विषमोऽथवा॥३७॥

३७. किं चान्यो-ला.।

तीक्ष्णाग्निना तु पातव्यं द्विकालमपि माहिषम्।
तस्य धातून् पचत्यग्निर्यदा तेन न सिञ्चति॥३८॥

३८. तीक्ष्णाग्नेन-ला.।

दूध स्निग्ध, गुरु व शीतल होता है। अतः तीनों समय दूध नहीं पीना चाहिए। क्योंकि तीनों समय दूध पीने से यह समाग्नि विषमाग्नि एवं मन्दाग्नि को शान्त कर देता है।

तीक्ष्णाग्नि व्यक्ति को तो दो समय भैंस का दूध भी पी लेना चाहिए। क्योंकि यदि वह भैंस के दूध से अपनी तीव्र अग्नि का सेचन नहीं करेगा तो वह रस, रक्त आदि शरीर-धातुओं को पचाने लगेगी।

क्षीरं हितं श्रेष्ठरसायनं च
क्षीरं वपुर्वर्णबलेषु शस्तम्।
क्षीरं हि चक्षुष्यवरं नराणां
क्षीरं वयःस्थापनमुत्तमं च॥३९॥

३९. बलायुषं च-ला.। चाक्षुष्यकरं-ला.। ०मुत्तरं च-ला.।

दूध अतीव हितकर श्रेष्ठ रसायन है। यह शरीर के बल को बढ़ाने व रंग निखारने में बहुत उत्तम माना जाता है। दूध नेत्र हितकारी पदार्थों में अति उत्तम है। यह एक श्रेष्ठ वयःस्थापन (दीर्घकाल तक युवावस्था बनाये रखने वाला व बुढ़ापे के प्रभाव को कम करने वाला) द्रव्य है।

क्षीरं हि सन्दीपनवेदनीयं
क्षीरं हि चोष्णं मलशोधनं च।
क्षीरं हि सन्धानकृदुष्णशीतं
क्षीरं कवोष्णं च समीरनाशनम्॥४०॥

४०. मलनाशनं च-ला.।

गर्म दूध अग्नि सन्दीपन करने वाला तथा मल का शोधन करने वाला होता है। गर्म व शीतल दूध अस्थिसन्धान करने वाला (टूटी हड्डी को जोड़ने वाला) होता है। कवोष्ण (गुनगुना) दूध वातनाशक होता है।

मत्स्यमांसगुडमुद्गमाषकैः कुष्ठमावहति सेवितं पयः।
शाकजाम्बवसुरासवैः श्रितं मारयत्यबुधमाशु सर्पवत्॥४१॥

४१. मुद्गमूलकैः-ला.। सुरासवे-ला.।

मछली, मांस, गुड़, मूंग एवं उड़द के साथ सेवन करने से दूध कुष्ठ रोग पैदा कर देता है। शाक, जामुन, सुरा (मदिरा) व विविध प्रकार के आसवों के साथ सेवन करने से यह सर्प के समान शीघ्र ही मारक बन जाता है।

अम्लेष्वामलकं पथ्यं लवणेषु च सैन्धवम्।
कषायेष्वभया प्रोक्ता कटुवर्गे तथार्द्रकम्।।४२।।

४२. कषायेषु यवाः पथ्याः-ला.।

पटोलं तिक्तवर्गेषु शर्करा मधुरेषु च।
द्विदलानां तथा माषाः शाकेषु सुनिषण्णकम्।।४३।।

दूध के संयोगी पदार्थ- अम्ल रस वाले द्रव्यों में आंवला दूध के साथ पथ्य होता है। लवणों में सैन्धव लवण दूध के साथ पथ्य होता है। कषाय (कषैला रस वाले) पदार्थों में अभया (हरड़) का दूध के साथ मेल है। कटु (चरपरे) पदार्थों में अदरक दूध के साथ लिया जा सकता है। तिक्त वर्ग वाले पदार्थों में पटोल (परवल) का दूध के साथ संयोग मान्य है। मधुर वर्ग वाले पदार्थों में शर्करा का दूध के साथ मेल है। दलहन में उड़द का दूध के साथ मेल है। शाकों में सुनिषण्णक नामक शाक दूध का अविरोधी माना जाता है।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते क्षीरवर्गः ।।

अथ दधिगुणाः

अथ गोदधि

पवित्रमतिरुच्यं च दीपनं बलवर्द्धनम्।
वातघ्नं मधुरं स्निग्धं दधिगव्यं मनोहरम्।।१।।

१. पवित्रमतिशीतं-ला.। रुक्षं-ला.।

<u>पवित्रमतिरुच्यं च दधि गव्यं मनोहरम्।</u>
<u>स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्।।</u>

वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं मनोहरम्।

अरोचके पीनसकासकृच्छ्रे शीतज्वरे तद्विषमज्वरे च।
दुर्नामरोगे ग्रहणीगदे च गव्यं प्रशस्तं दधि सर्वदैव॥२॥

२. तद्विषमे ज्वरे च-ला.। वा-ला.।

अरोचक (भोजन में अरुचि/मन्दाग्नि), पीनस (पुराना जुकाम/नजला), कास (खांसी), मूत्रकृच्छ्र, शीतज्वर, विषमज्वर, दुर्नामरोग (बवासीर) व ग्रहणीरोग में गाय का दही सदा प्रशस्त होता है।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु निन्दितं दधि दोषकृत्।
हेमन्ते शिशिरे तच्च वर्षाकाले च शस्यते॥३॥ इति गोदधिः।

३. बलप्रदम्-ने.। चैव-ला.।

शरद्, ग्रीष्म व वसन्त ऋतुओं में दही का सेवन दोषकारक होने से निन्दित माना गया है। हेमन्त, शिशिर व वर्षा ऋतुओं में दही खाना स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है।

अथ माहिषं दधि

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तप्रसादनम्।
बलासवर्धनं बल्यं विशेषान्माहिषं दधि॥४॥

४. रक्तपित्त-ने.,ला.। वृष्यं-ला.।

भैंस का दही विपाक में मधुर, वृष्य तथा वातपित्त का शमन करने वाला होता है। यह कफवर्द्धक व विशेष रूप से बलवर्द्धक होता है।

स्निग्धं मधुरशीतं च बलवर्णकरं गुरु।
वृष्यं मेदस्करं स्वादु श्रमघ्नं वातनाशनम्॥५॥

भैंस का दही मधुर, शीतल, बलकारक, रंग निखारने वाला व गुरु होता है। यह वृष्य, चर्बी बढ़ाने वाला, स्वादु, थकान दूर करने वाला व वातनाशक होता है।

श्लेष्मामवर्धनं चैव सरं पुष्टिकरं तथा।
पथ्यं तीक्ष्णे च दहने माहिषं दधि कान्तिदम्॥६॥

भैंस का दही कफवर्द्धक, आमदोषकारक, सर व पुष्टिकर होता है।

यह तीव्र जठराग्नि वालों के लिए पथ्य माना जाता है तथा शरीर की कान्ति बढ़ाता है।

माहिषं दधि बलासकारकं
वह्निमान्द्यकरमाशु गुरुत्वात्। ७. तत्र योग्यकटुकैरवचूर्ण्य
व्योषसैन्धवयुतं खलु भोज्यं
माहिषं च लघुतामुपयाति॥७॥

७. गुरुत्वम्-ला.। तत्प्रयुज्य कटुकैरवचूर्णम्-ला.।

भैंस का दही कफकारक होता है तथा यह गुरु होने से अग्निमान्द्य-कारक भी होता है। यदि व्योष (त्रिकटु अर्थात् कालीमिर्च, सौंठ, पीपल के चूर्ण) व सैन्धव के साथ इसे खाया जाए तो यह पचने में लघु हो जाता है।

॥ इति माहिषं दधि ॥

अथ अजादधि

दध्याजं कफपित्तनाशनकरं वातघ्नमुष्णं तथा
दुर्नामश्वसने च कासिनि हितं वह्नेश्च सन्दीपनम्।
वृष्यं बृंहणकान्तिदं बलकरं सर्वामयध्वंसनं
कार्श्ये चाप्यतिसारके निगदितं पथ्यं सदा प्राणिनाम्॥८॥

८. कासविहितं चाग्निसन्दीपनम्-ला.। आमार्शास्वति०-ला.।

बकरी का दही कफपित्तनाशक, वातहर तथा कुछ उष्ण होता है। यह अर्श, श्वास व कास रोगों में हितकर एवं जठराग्निदीपन होता है। बकरी का दही वृष्य, बृंहण, कान्तिवर्द्धक, बलकारक होता है तथा सर्वरोगनाशक माना जाता है। कृशता व अतिसार रोग में यह विशेष रूप से हितकर होता है।

कासश्वासहरं रुच्यं शोफातीसारनाशनम्।
आग्नेयं सर्वदोषघ्नं विशेषाच्छागलं दधि॥९॥

छागल (छोटी बकरी का) दही कासश्वासहर, रुचिकर, शोफ (सूजन) व अतिसार को दूर करने वाला होता है। यह आग्नेय (अग्निगुणप्रधान)

होता है तथा विशेष रूप से सर्वदोषहर माना जाता है।

।। इत्यजादधि ।।

अथ मेंढीदधि

आविकं च मधुरं गुरुकुष्ठ-
वातपित्तकफमाशु करोति।
कोपयेच्च कफवातमथार्शः
शोषदार्ढ्यबिबलेषु च शस्तम्।।१०।।

भेड़ का दही मधुर व गुरु होता है। यह कुष्ठ, वातपित्त एवं कफ दोष को शीघ्र ही बढ़ा देता है। यह कफ व वात को कुपित करता है तथा अर्श, शोष (क्षयरोग) व निर्बलता में उपयोगी माना जाता है।

आविकं मधुरं स्निग्धगुरुपित्तकफप्रदम्।
पथ्यं केवलवातेषु शोफे चानिलसम्भवे।।११।।

११. शोथे वा शोणितोत्थिते-ना.। चानिलशोणिते-ला.।

भेड़ का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु व पित्तकफवर्द्धक होता है। यह केवल वातरोगों में तथा वातजन्य शोथ (सूजन) में उपयोगी होता है।

सर्वदोषकरं दुष्टं कण्डूकुष्ठविवर्धनम्।
कृमिदुर्नामकृत्स्वादु विनिन्द्यं चाविकं दधि।।१२।।

भेड़ का दही सर्वदोषवर्द्धक, दुष्ट व खुजली एवं कोढ़ पैदा करता है। यह कृमि व बवासीर का निवारक, स्वादु तथा निन्दनीय होता है।

।। इति मेंढीदधि ।।

मीढीदधि-ला.।

अथ तुरगीदधि

वाडवं सुमधुरं बलवर्ण-
स्वेददाहमुपयाति विनाशम्।
दीपनीयमपि दोषलं सदा

चाक्षुषं च मरुतः प्रविकोपि॥१३॥

१३. वाजिजं समधुरं-ला.। विनाशनम्-ला.।

घोड़ी का दही सुमधुर, बलवर्णकारक, स्वेद (पसीना) व दाह को दूर करने वाला, दीपनीय, दोषवर्द्धक, नेत्रों के लिए हितकारी तथा वातप्रकोपक होता है।

दीपनीयमचक्षुष्यं वातलं दधि वाडवम्।
गुरु चोष्णं कषायं च कफमूत्रावहं च तत्॥१४॥

घोड़ी का दही दीपनीय, अचक्षुष्य (नेत्रों के लिए अहितकर), वातवर्द्धक होता है। यह गुरु, उष्ण, कषाय व कफ व मूत्र के विकार को दूर करने वाला होता है।

॥ इति तुरगीदधि ॥

अथोष्ट्रीदधि

वातार्शकुष्ठकृमिनाशनं च
उष्ट्री विपाके कटुकं सतिक्तम्।
सक्षारमम्लं कृमिकोष्ठकोपि
बल्यं च सन्तर्पणमाशुकारि॥१५॥

१५. कृमिकोष्ठकोपिनम्-ला.।

ऊँटनी का दही वात, अर्श, कुष्ठ व कृमियों का नाशक होता है। यह विपाक में कटु एवं तिक्त होता है तथा कुछ खारापन व खट्टापन लिए रहता है। यह बलकारक, सन्तर्पण व आशुकारी होता है।

॥ इत्युष्ट्रीदधि ॥

अथ स्त्रीदधि

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं सन्तर्पणं गुरु।
चक्षुष्यं ग्राहि दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तरम्॥१६॥

१६. सरमुष्णं कषायं च कफमूत्रापहं च तत्-ला.।

नारी का दही स्निग्ध, विपाक में मधुर, बल्य, सन्तर्पण व गुरु होता है। यह चक्षुष्य, ग्राही, दोषघ्न एवं गुणोत्तर (अधिक गुण वाला) होता है।

।। इति स्त्रीदधि ।।

अथ हस्तिनीदधि

लघु पाके बलासघ्नं वीर्योष्णं पक्तिनाशनम्।
कषायानुरसं नाग्या दधि वर्चोविवर्धनम्।।१७।।

१७. पित्तनाशनम्-ला.।

हथिनी का दही विपाक में लघु, कफनाशक, उष्णवीर्य व पक्तिशूल (परिणामशूल/भोजनपाचन के समय होने वाले पेटदर्द) का नाशक होता है। यह कषायानुरस तथा मलवर्द्धक होता है।

।। इति हस्तिनीदधि ।।

विज्ञेयमेव सर्वेषां गव्यमेव गुणोत्तरम्।
वातघ्नं कफकृत्स्निग्धं बृंहणं नातिपित्तकृत्।।१८।।

१७. न च पित्तहृत्-ला.।

सब प्रकार के दही में गाय का दही गुणों की दृष्टि से सर्वोत्तम माना जाता है। यह वातनाशक, कफकारक, स्निग्ध व बृंहण होता है तथा पित्त को अधिक नहीं बढ़ाता है।

कुर्याद्भक्ताभिलाषं च दधिमस्तु परिस्रुतम्।
शृतक्षीराश्रयाज्जातं गुणवद्दधि तत्स्मृतम्।
वातपित्तहरं रुच्यं धात्वग्निबलवर्धनम्।।१९।।

१९. गुरुवद्दधि-ला.।

दही के अन्दर का पानी मस्तु कहलाता है। यह भक्त (भात या अन्न) में रुचि पैदा करता है। उबले हुए दूध से जो दही बनाया जाता है, वह विशेषरूप से गुणकारी होता है। यह वातपित्तहर व रुच्य होता है तथा धातु, अग्नि व बल को बढ़ाता है।

दध्नस्तूपरि यो भागो घनस्नेहसमन्वितः।

सर इत्युच्यते लोके दध्नो वारि तु मस्त्विति॥२०॥

दही के ऊपर जो घना स्नेहयुक्त जलभाग होता है, उसे लोक में 'सर' कहते हैं। दही के अन्दर जो जलभाग होता है, उसे 'मस्तु' कहते हैं।

दधिसारो गुरुर्वृष्यो विज्ञेयोऽनिलनाशनः।
बस्तेर्विशोधनश्चापि कफपित्तविवर्धनः॥२१॥

२१. दधिरसो-ला.।

दधिसार गुरु, वृष्य तथा वातनाशक होता है। यह बस्तिशोधक (मूत्राशय को शुद्ध करने वाला) तथा कफपित्तवर्द्धक होता है।

दधि त्वसाररूक्षं च ग्राहि विष्टम्भि वातलम्।
दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम्।
तृष्णाश्रमहरं मस्तु लघु स्रोतोविशोधनम्॥२२॥

२२. क्लमहरं-ना., ला.।

सार रहित (.......) दही रूक्ष, ग्राही, विष्टभी व वातल होता है। मस्तु दीपनीय, अतिलघु, कषायरसयुक्त व रुचिकर होता है तथा तृष्णा व थकान दूर करने वाला, लघु एवं स्रोतों को शुद्ध करने वाला होता है।

अम्लं कषायमधुरमवृष्यं कफवातनुत्।
प्राह्लादनं प्रीणनं च दीपयत्यनलं च तत्।
बलमावहति क्षिप्रं भक्तछन्दं करोति च॥२३॥

२३. भिनत्त्याशुबलं- । दीपयत्यनलं-ना.। आह्लादनं बृंहणं च भिनत्त्याशुमलं च तत्-ला.। भुक्तछन्दं-ला.।

मस्तु अम्ल, कषाय, मधुर, अवृष्य, कफवातनाशक, प्रह्लादन व प्रीणन होता है तथा जठराग्नि को तीव्र करता है। यह शीघ्र ही बल बढ़ाता है तथा भोजन में रुचि पैदा करता है।

अम्लं स्याद्रसपाकतो गुरुतरं वातापहं स्नेहनं
ग्राह्युष्णं ग्रहणीगदे निगदितं विण्मूत्रकृच्छ्रापहम्।
बल्यं शोफकफाग्निमेदजननं रक्तप्रदं शुक्रदं

कासारोचकपीनसे विषमके शीतज्वरे तद्धितम्॥२४॥

२४. वातापहं शीतलं-ला.। रूक्षारोचकपीनसे-ला.। तन्मतम्-ला.।

खट्टा दही रस व पाक में गुरु, वातनाशक, स्नेहन, ग्राही, उष्ण व ग्रहणी रोग में लाभदायक होता है। यह सुखपूर्वक मलमूत्र विसर्जन करवाने वाला, बलकारक, शोफकफजनक, जठराग्निवर्द्धक, स्थौल्यकर, रक्तपित्तजनक व शुक्रवर्द्धक होता है। यह खांसी, अरोचक, पीनस व विषम शीतज्वर में हितकारी होता है।

ग्रहण्यां पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च विषमज्वरे।
अरोचके च मन्देऽग्नौ शस्यते दधि सर्वदा॥२५॥

ग्रहणीरोग, पीनस, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र, अरोचक व अग्निमान्द्य में दही सदैव अतीव उपयोगी होता है।

लवणमरिचसर्पिःशर्करामुद्गधात्री-
कुसुमरसविहीनं नैव मन्दं न नित्यम्।
न च शरदि वसन्ते नोष्णकाले न रात्रौ
न दधि कफविकारे पित्तरोगे न दद्यात्॥२६।

२६. नैव मद्यं-ला.।

सैन्धव लवण, कालीमिर्च, घी, शर्करा, मूंग, आंवला तथा कुसुमरस (मधु)- इनके साथ दही का अच्छा मेल है। अतः इनमें से किसी एक या अनेक द्रव्यों के साथ दही का सेवन करना चाहिए। अकेला दही खाने की अपेक्षा इनके साथ दही खाना अधिक लाभदायक होता है। मन्द (कम जमा हुआ) दही नहीं खाना चाहिए। यह दोषों को दूषित करने के कारण बहुत हानिकर होता है। इसी प्रकार नित्य अर्थात् सब ऋतुओं में दही नहीं खाना चाहिए। शरद्, वसन्त, ग्रीष्म ऋतु में तो विशेष रूप से दधिसेवन से बचना चाहिए। रात को कभी दही नहीं खाना चाहिए। कफविकार व पित्तरोग में भी दही का सेवन हानिकर होता है।

एलासैन्धवशर्करासमरिचं धात्रीगुडं सर्पिषा
पथ्यं स्याद्वरमुद्गसूपसहितं संसेवनीयं दधि।

नैवोष्णं न च मन्दकं न च शरद्ग्रीष्मे वसन्ते हितं
पित्तासृग्ज्वरकुष्ठदं भ्रमकरं वीसर्पदं चान्यथा॥२७॥

२७. मन्दजं-ला.।

एला (इलायची), सैन्धव लवण, शर्करा, कालीमिर्च, आंवला, गुड व घी के साथ दही खाना पथ्य होता है। इसी प्रकार मूंग की दाल के साथ भी दही खाना हितकर होता है। उष्ण दही नहीं खाना चाहिए। मन्द (कम जमा हुआ दही भी) हानिकारक होने से निषिद्ध है। शरद्, ग्रीष्म एवं वसन्त ऋतुओं में दही नहीं खाना चाहिए क्योंकि शरद् में पित्त का प्रकोप होता है, उस समय पित्तवर्द्धक होने से दही हानिकर बन जाता है। वसन्त में कफ प्रकुपित होता है। दही कफकारक होने से वसन्त में हानिकारक माना जाता है। ग्रीष्म ऋतु में उष्णता अधिक होती है। दही अम्ल होने के कारण उष्णवीर्य (गर्म तासीर वाला) होता है। अतः ग्रीष्म में भी दही खाने का निषेध है। यदि इस निर्देश का उल्लंघन कर दधि-सेवन किया जाएगा तो वह पित्तरक्त, ज्वर, कुष्ठरोग, भ्रम व विसर्पकारक होता है।

दधिदोषगुणाः

दधि त्रिकटुकयुक्तं राजिकाचूर्णमिश्रं
कफहरमनिलघ्नं चाग्निसंधुक्षणीयम्।
तुहिनशिशिरकाले सेवनीयं च पथ्यं
भवति सुदृढकायो रूपवान् सत्ववांश्च॥२८॥

त्रिकटुयुक्त व राजिकाचूर्ण (राई के चूर्ण से) मिश्रित दही कफहर, वातनाशक एवं अग्निदीपन होता है। हेमन्त व शिशिर ऋतु में उक्त मिश्रण के साथ दही का सेवन करना चाहिए। इससे व्यक्ति दृढ़काय, रूपवान् व बलवान् बनता है।

सगुडदधि सुखोष्णं धौतवस्त्रेण सम्यक्
युवतिकरविलासैर्गालितं धूपितं च।
शशिसममपि विश्वाजाजिचूर्णेनमिश्रं
रुचिरकरविलासैः सेवितं रोगहारि॥२९॥

२९. अधिककरविलासैः सेवितं मर्दितं च-ला.।

चन्द्र के समान धवल दही को गुड मिलाकर स्वच्छ वस्त्र से छानकर धूपित करें (सुगन्धित करें)। तदनन्तर इसमें सौंठ व जीरे का चूर्ण मिलाएं तथा अच्छी तरह फेंटकर पान करें। यह नाना रोगों को दूर करता है।

दधि तरुणमपथ्यं पथ्यतां याति सम्यक्
बलकरमतिवृष्यं मेदकृद्दीपनीयम्।
कफहरमनिलघ्नं नातिपित्तप्रकोपि
शरदि च न च सेव्यं माधुरान्नाम्लभावात्॥३०॥

३०. पथ्यसम्पुष्टिहेतोः-ला.। कफकरम्-ला.। ०प्रकोपं-ला.।
तदनिशमतिसेव्यं माधुरं चाम्लभावात्-ला.।

तरुण दधि (कम जमा हुआ दही) अपथ्य होता है। यह नाना वातरोगों का हेतु होता है। यह बलहर, अवृष्य, प्रमेदकारक

मधुरं भक्षयेन्नित्यमत्यम्लं वर्जयेत् सदा।
मधुरं दधि रोगघ्नमत्यम्लं रोगकारकम्॥३१॥

३१. भक्षयेच्चैव-ला.।

नित्य मधुर (खट्टेपन से रहित) दही का सेवन करना चाहिए। अति अम्ल (बहुत खट्टा) दही कभी नहीं खाना चाहिए। मधुर दही रोगनाशक होता है तथा अति अम्ल दही रोगकारक होता है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते दधिवर्गः ॥

इदानीं मस्तुगुणाः कथ्यन्ते-

स्रोतःशुद्धिं विधत्ते प्रकटयति रुचिं दीपयत्याशु वह्निं
कृत्वा शुद्धिं मलानां जरयति सहसा भुक्तमन्नं विचित्रम्।
उष्णं साम्लं कषायं लघु मधुररसं शूलविष्टम्भहारि
श्रेष्ठं मस्तु प्रशस्तं कफपवनरुजां दुष्टमूत्रग्रहेषु॥१॥

१. साम्लकषायं लघु सुरभिसरं-ला.।

मस्तु स्रोतों की शुद्धि करता है, भोजन में रुचि जागृत करता है, शीघ्र ही जठराग्नि को दीप्त करता है। मलों की शुद्धि करके शीघ्र ही भोजन

का पाचन करता है। यह उष्ण, अम्ल, कषाय, लघु व मधुर रस वाला होता है। शूल (दर्द) व विष्टम्भ (उदर में मल व वात के अवरोध) को दूर करता है। कफ व वातरोगों में प्रशस्त माना जाता है तथा मूत्रकृच्छ्र रोग में अतीव लाभकारी होता है।

स्वाद्वम्लं रुचिपक्तिदं कृमिहरं बल्यं कषायं सरं
भक्तच्छन्दकरं तृषोदरगरप्लीहार्षशोफापहम्।
श्रोतःशुद्धिकरं कफानिलहरं विष्टम्भशूलापहं
शीघ्रं मूत्रविकारगुल्मशमनं मस्तु प्रशस्तं लघु॥२॥

२. लघ्वन्ने रुचिपक्तिदं क्लमहरं–ला.।

मस्तु स्वादु (मधुर) व अम्ल रस वाला होता है। यह भोजन में रुचिजनक व पाचन होता है। कृमिहर, बल्य, कषाय एवं सर होता है। मस्तु अन्न के साथ खाने से उसे रुचिकर बनाता है। तृषा, उदररोग, विष, प्लीहाविकार, अर्श एवं शोफ में लाभदायक होता है। यह स्रोतों की शुद्धि करता है, कफवात का निवारण करता है। विष्टम्भ व शूल को दूर करता है। शीघ्र ही मूत्रविकार व गुल्मरोग का शमन करता है। इस प्रकार मस्तु बहुत ही प्रशस्त व लघु भोज्य पदार्थ है।

लघुत्वाद् दीपनत्वाच्च विष्टम्भाध्माननाशनात्।
स्रोतःशुद्धिकरत्वाच्च तक्रादपि विशिष्यते॥३॥

मस्तु लघु, दीपन, विष्टम्भहर व आध्मान नाशक होने से तथा स्रोतों की शुद्धि करने के कारण तक्र से भी विशिष्ट माना जाता है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते मस्तुवर्गः ॥

अथ तक्रवर्गः

इदानीं तक्रगुणाः कथ्यन्ते–

घोलं मथितमुदश्वित्तक्रं चैतच्चतुर्विधं ज्ञेयम्।
सरसं निर्जलमाद्यं साम्भः सारवर्जितं मथितम्॥१॥

१. घोलं निर्जलससरं स्यात्साम्भः सरवर्जितं मथितम्–आ.।

घोल, मथित, उदश्वित् व तक्र ये चार प्रकार होते हैं। उनमें पहला घोल नामक भेद सरस, मक्खन सहित व जलरहित होता है। अर्थात् दही को बिना पानी डाले व बिना मक्खन निकाले ही विलोडन करने से 'घोल' नामक भेद बनता है। दूसरा भेद 'मथित' है, यह सारवर्जित (मक्खन रहित) व जलसहित होता है।

पादसलिलमुदश्वित्तदर्धजलं तक्रमाहुश्च।
प्रत्येकं चतुर्णांविधाज्ञेयाप्रयत्नेन॥२॥

दही में चतुर्थांश जल मिलाकर मन्थन करने से 'उदश्वित्' बनता है। आधा जल मिलाकर मन्थन करने से 'तक्र' बनता है। ये दोनों ही मक्खन रहित होते हैं।

ससरं निर्जलं घोलं मथितं सरवर्जितम्।
पादोदकमुदश्वित्स्यात्तक्रमर्धजलं भवेत्॥३॥

३. उदश्वितत्तक्रम्-ला.।

मक्खन सहित व जल रहित रूप में मथा गया दही 'घोल' कहलाता है। जल के साथ मथकर मक्खन निकालने पर 'मथित' बनता है। चतुर्थांश जल वाला 'उदश्वित्' तथा आधे जल वाला 'तक्र' कहलाता है। ये दोनों भेद भी मक्खन रहित ही होते हैं।

गव्यं तु दीपनं तक्रं मेध्यमर्शस्त्रिदोषनुत्।
हितं तुल्यातिसारेषु प्लीहार्शोग्रहणीगदे॥४॥

गाय का तक्र दीपन, मेध्य व अर्शरोगनिवारक एवं त्रिदोषहर होता है। यह ....

माहिषं श्लेष्मलं तक्रं सान्द्रं शोफकरं गुरु।
हन्ति गुल्ममतीसारं प्लीहार्शोग्रहणीगदान्॥५॥

भैंस का तक्र कफवर्द्धक, सान्द्रगुणयुक्त (गाढ़ा), शोफ (सूजन) करने वाला व गुरु होता है। यह गुल्म, अतिसार, प्लीहाविकार, अर्श व ग्रहणी रोग को नष्ट करता है।

सुस्निग्धं छागलं तक्रं लघु दोषत्रयापहम्।
गुल्मार्शोग्रहणीशोफपाण्ड्वामयविनाशनम्॥६॥

बकरी का तक्र सुस्निग्ध, लघु व त्रिदोषनाशक होता है। यह गुल्म, अर्श, ग्रहणी, शोफ व पाण्डुरोग को नष्ट करता है।

घोलं मारुतपित्तहारि मथितं पित्तापहं श्लेष्महृत्
पित्तश्लेष्मविनाश्युदश्विदधिकं तक्रं त्रिदोषापहम्।
मन्दाग्नावरुचौ तथैव नितरामन्येषु रोगेष्वपि
श्रेष्ठं तक्रमिदं वदन्ति मुनयस्तेनोत्तमं प्राणिनाम्॥७॥

७. वातापहं-ला.।

घोल वातपित्तहर होता है। मथित कफपित्तहर होता है। उदश्वित् पित्तश्लेष्महर होता है तथा तक्र त्रिदोषहर होता है। मन्दाग्नि, अरुचि व अन्य रोगों में तक्र विशेष रूप से लाभकारी माना गया है। अतः मुनिजनों ने इसे प्राणियों के लिए अतीव उपयोगी व उत्तम बताया है।

अम्लेन वातं मधुरेण पित्तं
कफं कषायेण निहन्ति सद्यः।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥८॥

तक्र अम्लरस से वात तथा मधुर से पित्त एवं कषाय से कफ को शीघ्र शान्त करता है। इस प्रकार यह त्रिदोषहर होने से अति लाभदायक होता है। जैसे स्वर्ग में देवताओं के लिए अमृत सर्वोत्तम पेय है, इसी प्रकार भूमि पर मनुष्यों के लिए अमृत के स्थान पर तक्र ही सर्वोत्तम पेय है।

वातश्लेष्मविनाशनं रुचिकरं कृच्छ्राश्मरीछेदनं
मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं प्लीहघ्नगुल्मापहम्।
दुर्नामोदरपाण्डुरोगजठरकशार्तिनिः कृदनं
तक्रं दीपनपाचनं लघुतरं पथ्यं सदा प्राणिनाम्॥९॥

९. प्लीहादिगुल्मापहम्-ला.। कृशार्तिनिः कृन्तनं-ला.।

तक्र वातकफनाशक, रुचिकर, मूत्रकृच्छ्रनिवारक, अश्मरीनाशक (पथरी को नष्ट करने वाला), मूत्राघातहर, प्रमेहशामक, प्लीहाविकार व गुल्मरोग को नष्ट करने वाला होता है। यह अर्श, उदररोग, पाण्डुरोग, भस्मकरोग को दूर करता है तथा पाचन व दीपन एवं लघु होता है, इसीलिए यह प्राणियों के लिए सदा पथ्य माना जाता है।

आमातिसारे च विषूचिकायां
शीतज्वरे पाण्डुषु कामलायाम्।
प्रमेहगुल्मोदरवातशूले
नित्यं पिबेत्तक्रमरोचके च॥१०॥

आम (आंव), अतिसार, विसूचिका (हैजा), शीतज्वर, पाण्डु, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदरवात (पेट की गैस), शूल (पेटदर्द) तथा अरोचक (मन्दाग्नि) में सदा तक्र पीना चाहिए।

तक्रं स्वादुकषायमम्लकरसं रूक्षं लघूष्णं हितं
गुल्मार्शःपरिणामशूलशमनं छर्दिप्रसेकापहम्।
तृष्णारोचकशोफमेहगरजिच्छ्लेष्मानिलघ्नं परं
सेव्यं मूत्रगदापहं ज्वरहरं स्नेहोत्थपीडापहम्॥११॥

११. भक्ष्यं लघूष्णं-ला.। मेदगर०-ला.।

तक्र स्वादु, कषाय व अम्लरस वाला, रूक्ष, लघु, उष्ण व हितकर होता है। यह गुल्म, अर्श, परिणामशूल (भोजन पाचन के समय होने वाले दर्द) को दूर करने वाला तथा छर्दि (उल्टी) व प्रसेक (लार टपकने के रोग) को दूर करता है। तक्र तृष्णा (प्यास), अरोचक (भोजन में अरुचि), शोफ, प्रमेह, विष को दूर करने वाला व परम कफवातनाशक होता है। यह मूत्ररोग, ज्वर एवं घृतजन्य अपच को भी दूर करता है। अतः यह सेवन करने योग्य उत्तम पेय है।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च।
मार्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते॥१२॥

शीतकाल, अग्निमान्द्य, कफजरोग, मार्गावरोध (स्रोतों की रुकावट)

व वातदोष में तक्र का सेवन बहुत लाभदायक होता है।

तत्पुनर्मधुरं श्लेष्मप्रकोपनकरं परम्।
वातघ्नं पित्तशमनमम्लं चेत् पित्तकृत्तदा॥१३॥

१३. ०कृत्सदा-अ.,ला.।

मधुर तक्र कफवर्द्धक होता है। अम्ल तक्र वातनाशक होता है, परन्तु पित्त को बढ़ाता है।

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्।
साजाजिलवणं तक्रं सर्वकालेषु शस्यते॥१४॥

१४. पीत्वा तक्रं कफे वापि-ला.।

वातदोष में सैन्धव लवण के साथ अम्लतक्र लेना चाहिए। पित्तदोष में शर्करायुक्त मधुर तक्र लेना चाहिए तथा कफ दोषों में व्योष (त्रिकटु) व यवक्षार आदि के साथ तक्र का सेवन करना चाहिए। जीरा व सैन्धव लवण के साथ तक्र का सेवन सर्वकाल में उत्तम माना गया है।

धात्र्येलाजीरकैः पित्ते वाते सार्द्रकसैन्धवम्।
व्योषाग्निपटुजीरैस्तु कफे तक्रं सुसंस्कृतम्॥१५॥

पित्त में धात्री (आंवला), एला (इलायची) व जीरे के साथ तक्र लेना चाहिए। वात में अदरक व सैन्धव लवण के साथ तक्र लेना चाहिए। कफ में व्योष (त्रिकटु), अग्नि (चित्रक), पटु (लवण) एवं जीरे के साथ तक्र का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों के साथ संस्कारित तक्र तीनों दोषों का शमन कर देता है।

स्थौल्यं करोति हरतेऽनिलमेतदेव
यन्नोष्णतामुपगतं दधि तत्कदाचित्।
सर्पिः सितामलकमुद्गकषाययुक्तं
सेव्यं वसन्तशरदातपकालवर्ज्यम्॥१६॥

१६. न कदाचिदेव-ला.। शरदागमकाल-ला.।

दही शरीर को स्थूल (हृष्ट-पुष्ट/मोटा-ताजा) करता है तथा वातहर होता है। दही को उष्ण रूप में कभी नहीं खाना चाहिए। घी, शक्कर, आंवला, मूंग व कषायरस वाले पदार्थों के साथ हेमन्त शिशिर व वर्षाकाल में दही खाना चाहिए। वसन्त, शरद् व ग्रीष्म ऋतु में दही का सेवन वर्जित है क्योंकि यह उष्णवीर्य (गर्म तासीर वाला) होता है।

नवनीतोद्धारं मथितं कथयन्ति समं गुणं सुधियः।
चिरमथितं मथितं सत्पुनरुत्पत्तिकरं न कस्य दोषस्य॥१७॥

१७. मथितं पुनर्-ला.।

नवनीतयुक्त जो 'घोल' नामक भेद है तथा नवनीतरहित जो 'मथित' नामक भेद है, इन दोनों को बुद्धिमान् लोग बहुत गुणकारी बतलाते हैं। इन्हें ताजा रूप में ही लेना चाहिए। चिरमथित अर्थात् मथने के बाद बहुत देर तक रखे हुए मथित का सेवन तो बहुत ही दोषकारक माना गया है।

न च तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके॥१८॥

१८. रक्तपित्तजे-क.। नैव तक्रं-ला.।

चोट लगने पर तक्र न दें और ग्रीष्मकाल में भी तक्र न दें। अतिदुर्बल को भी तक्र न दें। मूर्छा, भ्रम, दाह व रक्तपित्त रोग में भी तक्र वर्जित है।

शशिकुन्दसमप्रभशंखनिभं
युवतीकरनिर्मलनिर्मथितम्।
परिपक्वकपित्थसुगन्धरसं
पिब हे नृप सर्वरुजापहरम्॥१९॥

१९. निर्मथितंमथितं-ला.।

हे राजन् ! चन्द्रमा, कुन्दपुष्प व शंख के समान धवल तथा युवतियों के द्वारा निर्मलतापूर्वक मथे गये परिपक्व कपित्थ फल के समान सुगन्धित, सरस एवं सर्वरोगहर तक्र का सेवन किया करो।

हेमन्ते शिशिरे पिबेत्तु मथितं तक्रं वसन्ते ऋतौ

नैदाघे च ऋतावुदश्विदुचितं स्याद् घोलकं प्रावृषि।
शस्तं स्यान्मिलितं घनान्तसमये स्यात् कालशेयं तथा
सोऽयं षट्सु ऋतुष्वपि प्रणिहितः स्यात्तक्रपानक्रमः॥२०॥

हेमन्त व शिशिर ऋतु में 'मथित' का सेवन करना चाहिए। वसन्त में 'तक्र', निदाघ में 'उदश्वित्' तथा वर्षा में 'घोल' का सेवन करना चाहिए। शरद् ऋतु में 'मिलित' तथा हेमन्त में 'कालशेय' का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार छहों ऋतुओं में तक्रपान का ये उचित क्रम है।

मथितं गोरसं घोलं द्रवमम्लं विलोडितम्।
श्वेतं दण्डाहतं सान्द्रं नामतः परिकीर्तितम्॥२१॥

२१. ०मम्लविलोडितम्-ला.। श्वेतदण्ड०-ला.।

तक्र के भेद इस प्रकार भी वर्णित किए जाते हैं- मथित, गोरस, घोल, द्रव्य, अम्ल, विलोडित, श्वेत, दण्डाहत व सान्द्र।

द्विगुणाम्बुश्वेतमद्यमर्धोदकमुदस्वितम्।
तक्रं त्रिभागे भिन्नं तु केवलं मथितं स्मृतम्॥२२॥

२२. श्वेतमिदमर्धोदकमिति स्मृतम्-ला.। त्रिभागभिन्नं-ला.।

तक्रोदने स्थौल्यकरं दधि स्याद्
दध्योदने तक्रमतीव पथ्यम्।
क्षीरोदने ते विषवत्प्रकल्प्ये
तयोः प्रयोगे विषवत्पयश्च॥२३॥

तक्रस्योपरि यत्तोयं तदुदश्वित् प्रकीर्तितम्।
दध्नश्चाधस्तु यत्तोयं तन्मस्तु परिकीर्तितम्॥२४॥

२४. यत्तोयमुदश्वित् परिकल्पितम्-.आ.। दध्नश्चाधस्तु-अ.आ.। दधेरधस्तु-ला.।

तक्र के ऊपर जो पानी आ जाता है, उसे उदश्वित् कहते हैं। दही के अन्दर जो पानी का अंश होता है, उसे मस्तु कहते हैं।

ग्राहिणी वातला रूक्षा दुर्जरा तक्रकूर्चिका।
तक्राल्लघुतरो मण्डः कूर्चिका दधितक्रजा॥२५॥

२५. तक्रे लघुतरो-ला.। ०तक्रवत्-ला.।

तक्रकूर्चिका ग्राही, वातक, रूक्ष एवं दुर्जर होती है। मण्ड तक्र से लघुतर होता है। कूर्चिका दधि व तक्र से बनती है। भाव यह है कि अत्युष्ण दूध में दही मिला देने से वह फट जाता है तथा दधि-कूर्चिका बनती है। इसी प्रकार अत्युष्ण दूध में तक्र मिला देने से वह फट जाता है तथा उसका ठोस भाग तक्र-कूर्चिका कहलाता है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते तक्रवर्गः ॥

अथ नवनीतवर्गगुणाः

अतः परं नवनीतगुणाः कथ्यन्ते-

शीतं वर्णबलप्रदं सुमधुरं वृष्यं च संग्राहकं
वातघ्नं कफकारकं रुचिकरं हृद्यं त्रिदोषापहम्।
कामाध्वश्रमशान्तिदं रतिकरं कान्तिप्रदं पुष्टिदं
सद्यस्कं नवनीतमुक्तमृषिभिस्तत्सर्वरोगापहम्॥१॥

१. रुचिहरं-ला.। उद्धृतमिदं स्यात्-ला.।

नवनीत (मक्खन) रंग निखारने वाला, बलवर्द्धक, सुमधुर, वृष्य एवं संग्राही होता है। यह वातनाशक, कफकारक, रुचिकर, हृद्य व त्रिदोषहर होता है। मक्खन रति व मार्ग के श्रम से उत्पन्न दुर्बलता को दूर करने वाला, रतिशक्तिवर्द्धक, कान्तिप्रद, पुष्टिकर होता है। ताजे नवनीत को ऋषियों ने सर्वरोगहर बताया है।

शीतं बलाढ्यं मधुराम्लमेध्यं
श्लेष्मापहं पित्तमरुत्प्रणुच्च।
शोषे क्षतक्षीणकृशातिवृद्ध-

बालेषु शस्तं नवनीतमुक्तम्॥२॥

२. मरुत्प्रणुच्च-उ., मरुत्प्रशस्तम्-आ., मरुत्प्रणाशम्-ज.जो.ला.। मधुराम्लवृष्यं-ला.। शोककृशक्षीणक्षयातिवृद्धाबालेषु पथ्यं-ला.।

नवनीत शीतल, बलवर्द्धक, मधुराम्ल (मीठा व खट्टा) तथा मेध्य होता है। यह कफनाशक व पित्तवातवर्द्धक होता है। क्षय व क्षतक्षीण रोग में तथा कृश, वृद्ध व बालकों के लिए नवनीत को अतीव उपयोगी व उत्तम बताया गया है।

गव्यं वा माहिषं वापि नवनीतं नवोद्धृतम्।
शस्यते बालवृद्धेषु बलकृद्धातुवर्धनम्॥३॥

३. बालवृद्धस्य-ला.।

गाय या भैंस का नवीन (ताजा) नवनीत बालक व वृद्धों के लिए विशेष रूप से लाभदायक होता है। यह बलवर्द्धक तथा धातुवर्द्धक होता है।

शीतं वर्णबलप्रदं सुमधुरं संग्राहि वह्निप्रदं
हृद्यं श्वासजरापहं क्षयहरं पित्तास्रवातापहम्।
कासार्शोऽर्दितशोषशोफशमनं तांगपीडापहं
सद्यस्कं नवनीतमाहिषमिदं स्यात्सर्वरोगापहम्॥४॥

४. शोकशोफ०-ला.। श्रस्तांगपीडापहं-ला.।

भैंस का नवनीत शीतल, रंग निखारने वाला, बलवर्द्धक, सुमधुर, संग्राही व जठराग्निदीपन होता है। यह हृद्य, श्वासरोगनाशक, वृद्धावस्था के प्रभाव को दूर करने वाला, क्षयरोगहर, पित्तरक्त व वात का निवारक होता है। यह नवनीत कास, अर्श, अर्दित (मुंह का लकवा), शोष, शोफ आदि रोगों को दूर करता है। चोट लगने पर अंग की पीडा को हरता है। इस प्रकार भैंस का ताजा मक्खन प्रायः सभी रोगों को दूर करता है।

दुग्धनिर्मथनोद्भूतं मन्थजं मधुरं हिमम्।
संग्राहि रक्तपित्तघ्नं नेत्ररोगहरं स्मृतम्॥५॥

दूध को मथकर निकाला गया मक्खन मधुर, शीतल व संग्राही होता

है। यह रक्तपित्तनाशक एवं नेत्ररोग-निवारक माना गया है।

★ यह पद्य गोदावरी तीरवासी ब्राह्मण से प्राप्त हस्तलेख में ही उपलब्ध हुआ है।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते नवनीतवर्गः

अथ घृतवर्गः

इदानीं घृतगुणाः कथ्यन्ते-

धीकान्तिस्मृतिकारकं बलकरं मेधाप्रदं बुद्धिकृत्
वातघ्नं कृमिनाशनं स्वरकरं पित्तापहं पुष्टिदम्।
वह्नेर्वृद्धिकरं विपाकमधुरं वृष्यं च शीतं सदा
सेव्यं गव्यमिदं घृतं बहुगुणं सद्यः समावर्तितम्।।१।।

१. शुद्धिकृत्-ला.। श्रमनाशनं-ला.।

घी बुद्धि, कान्ति, स्मृति, बल, मेधा व प्रज्ञा को बढ़ाता है। यह वातघ्न, कृमिनाशक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, पित्तनाशक व पुष्टिकारक होता है। घी अग्निदीपन, विपाक में मधुर, वृष्य व शीतगुणयुक्त होता है। इस प्रकार के बहुत गुणों से युक्त, तपाकर तैयार किए गए ताजे गाय के घी का सेवन करना चाहिए।

सर्पिर्गवां चाप्यमृतं विषघ्नं
चक्षुष्यमारोग्यकरं च वृष्यम्।
रसायनं बल्यमतीव मेध्यं
स्नेहोत्तमं चेति बुधा वदन्ति।।२।।

२. मन्दमतीव-ला.। स्तुवन्ति-ला.।

गाय का घी साक्षात् अमृत रूप होता है। यह विषनाशक, चक्षुष्य (नेत्र हितकारी) आरोग्यकर, वृष्य, रसायन, बल्य एवं अतीव मेध्य (मेधा-वर्द्धक) होता है। आयुर्वेदवेत्ता विद्वान् जन इसे सभी स्नेहों में उत्तम बतलाते हैं।

।। इति गोघृतम् ।।

सर्पिर्माहिषमुत्तमं धृतिकरं <u>सौख्यप्रदं</u> कान्तिदं
पित्तश्लेष्मनिबर्हणं बलकरं वर्णप्रसादक्षमम्।
दुर्नामग्रहणीविकारशमनं पित्तास्रवातापहं
चक्षुष्यं दधि गव्यतः परमिदं हृद्यं मनोहारि च॥३॥

३. श्लेष्मप्रदं–आ.। वातश्लेष्म०–ला.। मन्दानलोद्दीपनं–ला.। चक्षुष्यं न च–ला.।

भैंस का घी उत्तम धृतिकर, सुखप्रद, कान्तिवर्द्धक, पित्तकफहर, बलकारक व रंग निखारने वाला होता है। यह बवासीर व ग्रहणी विकारों को शान्त करने वाला, पित्तरक्तशामक, वातनाशक एवं नेत्र हितकारी होता है। यह गाय के ताजे घी की अपेक्षा भी अधिक चक्षुष्य (नेत्र–हितकारी), हृद्य व मनोहारी होता है।

माहिष्यं तन्मानुषाणां प्रशस्तं
बल्यं वृष्यं वह्निसादं करोति।
मेदोद्भूतं मेहकृत्स्थौल्यकारि
तस्मान्नैतत्सर्वकालं निषेव्यम्॥४॥ (शालिनी छन्द)

४. बस्तिशुद्धिं करोति–ला.। नित्यं नित्यकालं–ला.।

भैंस का घी बल्य व वृष्य होता है। कुछ मात्रा अधिक होने पर यह जठराग्नि को मन्द कर देता है। यह चर्बी बढ़ाने वाला, प्रमेह जनक व स्थूलता करने वाला होता है। अतः सदा इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

दीपनीयमजासर्पिः चक्षुष्यं बलवर्धनम्।
कासे श्वासे क्षये चापि पथ्यं पाके च तल्लघु॥५॥

५. पानेषु तल्लघु–ला.।

बकरी का घी दीपनीय, चक्षुष्य, बलवर्द्धक, कास–श्वास एवं क्षयरोग में पथ्य तथा विपाक में लघु होता है।

॥ इति अजाघृतम् ॥

आविकं घृतमतीव गुरुत्वाद्
वर्ज्यमेव सुकुमारनराणाम्।
सद्य एव बलपुष्टिकरं स्यात्

कुष्ठजं श्वयथुनाशकरं च॥६॥ (रथोद्धता छन्द)

भेड़ का घी अति गुरु होने से सुकुमार प्रकृति वाले लोगों के लिए सदा त्याज्य होता है। यह शीघ्र ही बलपुष्टिकारक, कुष्ठविकारहर तथा शोफनाशक होता है।

गव्यं सुपाचितं सर्पिर्वातपित्तकफापहम्।
यथाक्षीरगुणं मेषीछागीगर्दभिकाघृतम्॥७॥

अच्छी प्रकार से पकाकर तैयार किया गाय का घी वातपित्तकफ-नाशक होता है। भेड़, बकरी एवं गर्दभी का घी उनके दुग्धगत गुणों के अनुसार गुण वाला होता है।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके श्लेष्मकृमिविषापहम्।
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम्॥८॥

ऊँटनी का घी विपाक में कटु, कफहर, कृमिनाशक व विषनिवारक होता है। यह दीपन एवं कफवातहर होता है तथा कुष्ठ, गुल्म व उदररोगों को दूर करता है।

पाके लघ्वाविकं सर्पिर्न च पित्तप्रकोपनम्।
कफेऽनिले योनिदोषे शोषे कम्पे च तद्धितम्॥९॥

९. शोफे-आ, शोषे-ज.।

भेड़ का घी विपाक में लघु होता है तथा पित्त को प्रकुपित नहीं करता है। यह कफ, वात, योनिदोष, शोषरोग व कम्पन रोग में हितकर होता है।

पाके लघूष्णं वीर्ये च कषायं कफनाशनम्।
दीपनं बद्धमूत्रं च विद्यादैकशफं घृतम्॥१०॥

१०. बलमूत्रं च-ला.।

एकशफ (एक खुर वाले पशुओं अर्थात् घोड़ी आदि) का घी विपाक में लघु, उष्णवीर्य, कषाय व कफनाशक होता है। यह दीपन, मूत्र में रुकावट पैदा करने वाला होता है।

।। इति खराश्वघृतम् ।।

चक्षुष्यमग्र्यं स्त्रीणां तु सर्पिः स्यादमृतोपमम्।
वृद्धिं करोति देहाग्नौ लघु पाके विषापहम्।।११।।

११. चाक्षुष्यमग्न्यं स्त्रीणां च-ला.। देहाग्नेर्लघु-ला.।

नारी का घृत नेत्र के लिए हितकारी द्रव्यों में प्रधान माना जाता है तथा अमृततुल्य होता है। यह जठराग्नि की वृद्धि करता है, विपाक में लघु तथा विषनिवारक होता है।

★ व्यावहारिक दृष्टि से नारी के दूध का घृत नहीं होता है। अतः उसके दूध में जो स्निग्ध अंश होता है, उसे ही घृत समझना चाहिए तथा ऐसे स्थलों पर घृत नाम से उसी स्निग्ध अंश का गुणवर्णन समझना चाहिए।

।। इति स्त्रीघृतम् ।।

कषायं बद्धविण्मूत्रं तिक्तमग्निकरं लघु।
हन्ति कारेणवं सर्पिः कफकुष्ठविषापहम्।।१२।।

१२. करेणजं हन्ति-ला.। ०विषक्रमीन्-ला.।

हथिनी का घी कषाय व तिक्त रस वाला, मलमूत्र को बांधने वाला, जठराग्निवर्द्धक व लघु होता है। यह कफविकार, कुष्ठ एवं विष का निवारक होता है।

।। इति हस्तिनीघृतम् ।।

आयुर्वृद्धिं वपुरपि दृढं सौकुमार्यं करोति
व्यायामस्त्रीनिधुवनकृतां श्रान्तिविच्छेदनं च।
पथ्यं बाल्ये वयसि तरुणे वार्द्धके चापि पथ्यं
नान्यत्किञ्चिद्भवति पुरुषे सर्पिषः स्वास्थ्यकारि।।१३।।

१३. आयुर्बुद्धिर्वपु०-ला.। ०निधुवनकृतः-ला.।

यद्वेदागमवेदिभिर्निगदितं साक्षादिहायुर्नृणां
यद्वैद्यैश्च रसायनाय कथितं सद्यो जरानाशनम्।
यत्सारस्वतकान्तिकल्पमतिभिः प्रोक्तं धियः सिद्धये

तद्वै कानककेतकीद्युतिचयच्छायं मुदे स्ताद् घृतम्॥१४॥

१४. यद्वैद्येन-ला.। कल्पकान्तिमतिभिः-ला.। तत्रैकायनकान्तिकृद्रुचिकरं पीतं-ला.।

वीर्येऽतिशीतं च रसे विपाके
स्वादु त्रिदोषघ्नरसायनं च।
तेजोबलायुष्यकरं च मेध्यं
चक्षुष्यमेतत् घृतमाहुरार्याः॥१५॥

१५. गुणे विपाके-ला.।

ओजस्तेजोऽभिवृद्धिं जनयति सुखदं कान्तिकृत्सम्यगुक्तं
पापालक्ष्मीश्रमघ्नं श्वसनकृशनहृज्जीर्णजातज्वरघ्नम्।
शूलोदावर्त्तरोगग्रहणिनिवहजां नाशयत्याशु पीडां
वातघ्नं पित्तनाशं स्वरकरविषजित् क्षुद्रमं चैव गव्यम्॥१६॥

१६. कसनहं जीर्णवातज्वरघ्नं-ला.। ०निवहां-ला.। भिषजे क्षुद्रमे चैक सेव्यं-ला.।

गाय का घी ओज व तेज को बढ़ाने वाला, सुखप्रद, कान्तिजनक, पाप/दोष को दूर करने वाला, शरीर की अलक्ष्मी (शोभाहीनता) का निवारक, थकान दूर करने वाला, श्वास-कासहर, जीर्णज्वरनाशक, शूलहर, उदावर्त्तरोग निवारक व ग्रहणीरोग नाशक होता है। यह पीड़ा का शीघ्र नाश करता है। यह वात व पित्त के विकारों को हरने वाला कण्ठस्वर को उत्तम बनाने वाला, विष के प्रभाव को दूर करने वाला होता है।

चक्षुष्यं वृष्यमाहुः स्मृतिधृतिकरणं राजयक्ष्माविनाशं
रूक्षे क्षीणे च पथ्यं वलिपलितहरं सामदोषप्रकोपि।
भूतोन्मादप्रवृत्ते बहुतिमिरकफे कृम्यपस्मारहारि
सर्वेषां सर्वदैव प्रथितगुणगणं साधु पथ्यं घृतं स्यात्॥१७॥

१७. ०यक्ष्माधिनाशं-ला.। ०प्रकोपं-ला.। भूतोन्मादे प्रमत्ते-ला.।

घृत नेत्रहितकारी, वृष्य, स्मृति व धृति को दृढ़ करने वाला,

क्षयरोगहर होता है। यह रूक्ष व क्षीणशरीर वाले के लिए विशेष रूप से पथ्य होता है तथा वलिपलित (झुर्री व बालों की सफेदी) को दूर करता है। आमदोष (अपच से बनने वाले आंव) को घृत और अधिक बढ़ा देता है। अत: अपच की स्थिति में घृतसेवन अतीव हानिकर होता है। भूतोन्माद (पागलपन आदि मानसिक रोग) तथा अपस्मार (मिर्गी) में घी अतीव कारगर होता है। यह तिमिर रोग (रतौंधी) को दूर करता है, कफ व कृमिनिवारक होता है। इस प्रकार नाना प्रकार के प्रसिद्ध गुणों वाला घी सभी के लिए सदैव बहुत उत्तम पथ्य है।

सद्यस्कं वस्त्रपूतं च मूत्रबस्तिविशोधनम्।
श्लेष्मलं पित्तवातघ्नं बलपुष्टिविवर्धनम्।।१८।।

१८. सद्याज्यं-ला.। पित्तनाशं च-ला.।

वस्त्र या चालनी आदि से छाना हुआ सद्यस्क (ताजा) घृत मूत्राशय की शुद्धि करता है। यह कफवर्द्धक, वातपित्तनाशक एवं बलपुष्टिकारक होता है।

पुराणं तिमिरश्वासपीनसज्वरकासनुत्।
मूर्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्।।१९।।

पुराना घृत तिमिर (नेत्ररोगविशेष/मन्ददृष्टि), श्वास-कास, पीनस व ज्वर को दूर करता है। यह मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रहबाधा व अपस्मार का निवारण करता है।

मदापस्मारमूर्छायशिर:कर्णाक्षियोनिजान्।
पुराणं तज्जयेद् व्याधीन् व्रणशोधनरोपणम्।।२०।।

२०. महापस्मारमूर्छा च-ला.। जयति-ला.।

पुराना घृत मद (नशा), अपस्मार, मूर्छा, शिरोरोग, कर्णरोग व नेत्ररोग को विशेषरूप से दूर करता है। यह घाव को शुद्ध करके शीघ्र ही भर देता है, अत: व्रणशोधन-रोपण कहलाता है।

उग्रगन्धि पुराणं स्याद्दशवर्षस्थितं घृतम्।

लाक्षारसनिभं शीतं तद्विसर्पग्रहापहम्॥२१॥

२१. तद्विसर्पिर्ग्रहा०-ला.।

दस वर्ष तक रखा हुआ बहुत पुराना घी तीव्र गन्ध से युक्त हो जाता है। यह लाक्षारस के समान दिखता है। ऐसा घृत शीतल गुण वाला, विसर्प रोग व ग्रहबाधा को विशेष रूप से दूर करने वाला होता है।

अपस्मारग्रहोन्मादवाते शस्तं विशेषतः।
पूर्वोक्तांश्चाधिकान् कुर्याद् गुणांस्तदमृतोपम्॥२२॥

२२. ०मादवतां-ला.।

पुराना घी अपस्मार, ग्रहबाधा व उन्माद में तो विशेष रूप से उत्तम माना जाता है। यह पूर्वोक्त गुणों को विशेष रूप से धारण करता है और साक्षात् अमृतरूप होता है।

निरामयानां नवयौवनानां कृत्वा गवां यद्दशधौतमद्भिः।
वह्नौ विपक्वं नवनीतनूतनं योग्यं घृतं तद्रसराजसेवितम्॥२३॥

२३. राजसेविनाम्-ला.।

....

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते घृतवर्गः ॥

अथ तैलवर्गः

इदानीं तैलगुणाः कथ्यन्ते-

उष्णं विपाके मधुरं सतीक्ष्णं
पित्तापहं वातनिवारणं च।
मेहं निहन्याद् बलशुक्रकारि
तैलं कृमिश्लेष्ममरुत्प्रणाशि॥१॥

१. विपाके कटुकं-ला.। कफापहं-ला.। कृमीन्निहन्याद्-ला.।

तैल उष्ण, मधुर व तीक्ष्ण गुण वाला होता है। यह विपाक में उष्ण तथा पित्तहर व वातनाशक होता है। तैल प्रमेह को दूर करने वाला तथा बल-शुक्रवर्द्धक होता है। यह कृमि, कफ व वात के विकारों को विशेष

रूप से नष्ट करता है।

कण्डूहरं कान्तिविवर्धनं च
केश्यं च मेध्यं व्रणरोपणं च।
तिलेषु जातं खलु यच्च तैलं
बालेषु वृद्धेष्वपि पथ्यमेतत्॥२॥

२. पथ्यमेतत्-अ.। योग्यमेतत्-आ.। वर्चो विवृद्धिं-ला.। तिलस्य जातिं-ला.।

तेल खुजली दूर करने वाला, कान्तिवर्द्धक, केशों के लिए हितकारी, मेधा- वर्द्धक व व्रणरोपण (घाव को भरने वाला) होता है। तिल का तेल विशेष रूप से बालक व वृद्ध के लिए हितकारी होता है।

न पित्तरोगे न च शोणिते वा
पथ्यं महाश्लेष्मविकारसंघे।
तिलोद्भवं तैलमुदाहरन्ति
वातश्रितान् हन्ति समस्तदोषान्॥३॥

३. शोणिते च-ला.। ०वातविकार०-ला.।

पित्तरोग, शोणित (रक्तपित्तरोग) में तेल पथ्य नहीं होता है। परन्तु बड़े-बड़े कफजन्य विकारों के समूह को दूर करने के लिए तिल का तेल बहुत उपयोगी होता है। यह वातजन्य सभी विकारों को भी नष्ट कर देता है।

कटूष्णवीर्यं बहुपित्तकारि
कफानिलघ्नं कुरुतेऽग्निदीप्तिम्।
पामादिदोषापहरं च तैलम्
अभ्यंगतः सर्षपजं तथैव॥४॥

४. सर्षप सम्भवं च-अ.,ला.। कट्वम्लवीर्यं-ला.। विण्मूत्रसंगं-ला.।

सरसों का तेल कटु, उष्णवीर्य व अति पित्तवर्द्धक होता है। यह कफवातनाशक और जठराग्निदीपन होता है। यदि इससे अभ्यंग (मालिश) की जाए तो यह खुजली आदि त्वचा के विकारों को दूर कर देता है।

कटूष्णं सार्षपं तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम्।

लघुपित्तास्रकृत्कोष्ठकुष्ठार्शोव्रणजन्तुजित्॥५॥

५.　सार्षपं तैलं-ला.।

सरसों का तेल कटु, उष्ण व तीक्ष्ण होता है। यह कफ, शुक्र व वात को नष्ट करता है। सरसों का तेल लघु, रक्तपित्तकारक होता है तथा कोष्ठ, कुष्ठ, अर्श, व्रण व कृमियों को नष्ट करता है।

एरण्डतैलं कृमिनाशनं च
समग्रशूलघ्नमरुत्प्रणाशि।
कुष्ठापहं चापि रसायनं च
सरं च मेधास्मृतिकान्तिवर्धनम्॥६॥

६.　सर्वत्रशूल०-ला.। पित्तप्रकोपानलशोधनं च-ला.।

एरण्ड का तेल कृमिनाशक, सब प्रकार के शूल व वायुविकारों को नष्ट करने वाला, कुष्ठहर व रसायन होता है। यह सर गुण वाला तथा मेधा, स्मृति व कान्ति को बढ़ाने वाला होता है।

सतिक्तोष्णमैरण्डं तैलं स्वादु सरं गुरु।
वर्ध्मगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम्॥७॥

७.　सतिक्तोषण-ला.। विषमं ज्वरम्-ला.।

एरण्ड का तेल तिक्त, उष्ण, स्वादु, सर (दस्तावर) व गुरु होता है। यह वर्ध्म (........), गुल्म, वातविकार, कफविकार, उदररोग व विषमज्वर को दूर करता है।

रुक्शोफौ च कटीगुह्यकोष्ठपृष्ठाश्रयाञ्जयेत्।
तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरण्डोद्भवं त्वति॥८॥

८.　०श्रायो जयेत्-ला.। पिच्छिलं रक्तै०-ला.।

लाल एरण्ड का तेल पीड़ा, सूजन व कोठ (त्वचा पर गोलाकार सूजन) को दूर करता है तथा कमर व गुह्य अंगों (गुप्तांगों) के विकारों का निवारक है। यह तीक्ष्ण, उष्ण, पिच्छिल (चिपचिपाहट युक्त) व विस्र (कच्चे मांस जैसी गन्ध वाला) होता है।

आमवातगजेन्द्राणां शरीरवनचारिणाम्।

एक एवाग्रणीर्हन्ता एरण्डस्नेहकेसरी॥९॥

९. त्वेरण्ड०-ला.।

शरीर रूपी वन में विचरण करने वाले आमवात (गठिया) रूपी हाथियों का निहन्ता (वध करने वाला) एरण्ड तेल रूपी सिंह ही सबसे मुख्य है।

कौसुम्भतैलं कृमिनाशनं च
तीक्ष्णं तथा नेत्रविनाशनं च।
खर्जूंश्च कण्डूश्च करोति कोपं
त्रिदोषजं चापि बलक्षयं च॥१०॥

१०. तेजो बलं नेत्र०-ला.।

कुसुम्भ (बर्रे) का तेल कृमिनाशक, तीक्ष्ण गुण वाला तथा नेत्रज्योति का नाशक होता है। यह खाज-खुजली पैदा करता है, बल का क्षय करता है तथा तीनों दोषों को कुपित कर देता है। उक्त प्रकार के दोषों के कारण आयुर्वेद में कुसुम्भ का तेल सबसे निकृष्ट माना गया है।

आरुष्करतैलमिदं च पुंसां सर्वामयघ्नम्।
कृमिनाशनं मेधाबलवर्णकरं नराणाम्॥
व्रणं च पूतिः पदभिन्नतारम्।

।। इत्यारुष्करतैलम् ।। यह पद्य केवल **ला.** हस्तलेख में उपलब्ध है।

लेपात्करञ्जतैलस्य दृष्टिरोगविनाशनम्।
कुष्ठे च पामाभिन्नानां सर्ववातविकारनुत्॥११॥

१०. ०तैलं च-ला.। ०वातविनाशनम्-ला.।

करञ्ज के तेल का लेपन करने से दृष्टिरोगों का निवारण होता है। यह कुष्ठ व विविध प्रकार के खुजली रोग को दूर करता है तथा सभी वातविकारों का निवारण करता है।

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटकविनाशनम्।
कुष्ठपामाकृमिहरं हन्याच्छ्लेष्मानिलामयान्॥१२॥

सर्जरस (राल) का तेल फोड़े-फुन्सियों को दूर करने वाला, कुष्ठहर, खुजलीनाशक व कृमिनिवारक होता है। यह कफ व वात के विकारों को नष्ट करता है।

।। इति रालतैलम् ।।

आक्षं स्वादुहिमं केश्यं गुरुपित्तानिलापहम्।
नात्युष्णं निम्बजं तैलं कृमिकुष्ठकफापहम्।।१३।। निबोलीतेल

१३. निम्बजं तिक्तं-ला.।

बहेड़े का तेल स्वादु (मधुर), शीतल, केशों के लिए हितकर व गुरु होता है। यह पित्त एवं वात के विकारों को दूर करता है। नीम का तेल अधिक उष्ण नहीं होता है। यह कृमि व कुष्ठ का निवारक होता है तथा कफविकारों को नष्ट करता है।

क्षौमं तैलमचक्षुष्यं पित्तकृद्वातनाशनम्।
अक्षजं कफपित्तघ्नं केश्यं दृक्श्रोत्रतर्पणम्।।१४।।

१४. आमे तैलमचाक्षुष्यं-ला.। आक्षजं-ला.।

क्षुमा (अलसी) का तेल नेत्रों के लिए हानिकारक, पित्तवर्द्धक तथा वातनाशक होता है। बहेड़े का तेल तो कफपितघ्न, केशों के लिए हितकर तथा आँख व कान का तर्पण करने वाला होता है।

।। इति अलसीतैलम् ।।

अधोभागिकमैरण्डमन्येषां तैलवत्स्मृतम्।
सर्वधान्यसमावर्ति वैदलं फलजानि च।।१५।।

तैलंवर्णबलं लेपा कण्डूखर्जू विनाशनम्। धान्यतैलं

१५. तैलवर्णकृतो लेपः खर्जूकण्डूविनाशनम्-ला.।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते स्नेहवर्गः ।।

अथ मधुवर्गः

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविषहिध्मास्रपित्तनुत्।

मेहकुष्ठकृमिच्छर्दि श्वासकासातिसारनुत्॥१॥

मधु चक्षुष्य (नेत्रहितकारी), छेदी (मलों का छेदन करने वाला) तथा तृषा, कफ, विष, हिचकी, रक्तपित्त को दूर करता है। यह प्रमेह, कुष्ठ, कृमि, छर्दि (उल्टी), श्वास-कास व अतिसार का निवारण करता है।

व्रणशोधनसन्धानरोपणं वातलं मधु।
रूक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा॥२॥

मधु व्रण (घाव) का शोधन, सन्धान व रोपण करने वाला होता है। यह वातल, रूक्ष, कषाय व मधुर होता है। मधु से बनी शर्करा भी मधु के समान गुण वाली होती है। जब मधु गाढ़ा होकर सूख जाता है, तब 'मधुशर्करा' के रूप में परिणत हो जाता है।

त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तं पक्वमांसं त्रिदोषकृत्।
हिक्काश्वासकृमिच्छर्दि-मेदःतृष्णाविषापहम्॥३॥

३. मात्रस्यात्सन्निपातलम्-ला.। ०कफछर्दिमेह०-ला.।

मधु त्रिदोषनाशक कहा गया है। यह हिचकी श्वास-कास, कृमि, छर्दि, मेद, तृष्णा व विषविकार को दूर करता है।

मोटे व्यक्ति को पतला करने का उपाय-

क्षौद्रं जलेन संसृष्टं स्थूलः प्रातः पिबेन्नरः।
कृशो भवति सप्ताहाल्लेखनं तस्य जायते॥४॥

४. संघृष्टं स्थौल्यं प्रति-ला.। तत्र जायते-ला.।

स्थूल व्यक्ति को प्रातः जल में मिलाकर मधु का सेवन करना चाहिए। ऐसा करने से वह एक सप्ताह में कृश हो जाता है, क्योंकि जल के साथ मधु के सेवन से शरीर का लेखन (चर्बी की छंटाई) हो जाती है।

लेपे हितं रक्तगुदांकुराणां
प्रज्ञोद्भवं लेह्यतमं च मेध्यम्।

सर्वो गुरुश्चापि रसायनानां
कासापहश्चापि मधुप्रयोगः॥५॥

५. लेह्यं महोभिवृद्धिः-ला.। सर्वे गुरु०-ला.। कासापहा वापि-ला.।

खूनी बवासीर में मस्सों पर मधु का लेपन करने से बहुत लाभ होता है। शंखपुष्पी आदि मेध्य ओषधियों में मधु मिलाकर चाटने से मेधावृद्धि होती है। मधु रसायन में उत्तम माना जाता है तथा इसके प्रयोग से कास रोग दूर हो जाता है।

मेहे हितः स्यान्मलछर्दिनाशः
हिक्कातिसारे व्रणकुष्ठहन्ता।
कण्डूप्रणाशे लघुदीपनानां
दिव्यामृतं सर्वमधुप्रयोगः॥६॥

६. दिव्यामृतः सार्वमधुप्रयोगः-ला.।

प्रमेह में मधु हितकारी होता है। इससे मलों का छेदन होता है। छर्दि का निवारण होता है। हिचकी व अतिसार मधु के प्रयोग से दूर हो जाते हैं। इससे घाव भर जाता है तथा कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। खुजली को दूर करने के लिए लघु व दीपन पदार्थों के साथ मधु का सेवन करना चाहिए। मधु दिव्य अमृत रूप है, इसके प्रयोग से बहुत से रोग नष्ट होते हैं।

स्थावरं जङ्गमं हन्ति कृत्रिमं च तथा विषम्।
वलिपलितनिर्मुक्तो देहस्तस्मात् प्रजायते॥७॥

७. चापि कृत्रिमं च विषापहम्-ला.। देहस्तस्मिन्-ला.।

मधु स्थावर, जंगम व कृत्रिम विष को नष्ट कर देता है। मधु का सेवन करने से मनुष्य का शरीर वलि (झुर्रियों) व पलित (केशों के श्वेतपन) से मुक्त हो जाता है।

क्षतक्षीणहितं चैव पाण्डुकामलरोगजित्।
स्थूलकाये हितं चैव रक्तोद्धतिहरं मधु॥८॥

८. रक्तोद्धतिहरं-ना.। रक्ते चापि हितं-आ.,ला.।

मधु क्षतक्षीण (रोगविशेष, जिसमें अधिक श्रम या मैथुन आदि के कारण छाती का रस व मांस आदि सूख जाता है) में अतीव हितकर होता है। यह पाण्डु व कामला रोग को दूर करता है। मोटापे में पानी के साथ मधु का सेवन करना बहुत लाभदायक होता है। यह रक्तोद्धति (रक्त में पित्त की प्रचण्डता) को हरता है तथा रक्तपित्त रोग को शान्त कर देता है।

कुञ्जकोटरसंस्थित्या कृष्णवर्णसरं तथा।
त्वयाकारगतार्तैतन्मधु चापि त्रिदोषकृत्॥९॥

९. स्वापदोषकृत्-..........। स्वापदोषहृत्-ला.।
कृष्णवर्णरसं-गो.ना, कृष्णवर्णसरं-अ.आ., कृष्णवर्णकरं-को.ज.जो.ला.।

पाके स्वादु मधु श्रेष्ठं विपाके दोषसंयुतम्।
तन्मधुश्च विरुद्धानां वारिणा मधुसम्भव॥१०॥

१०. मधुसम्भवम्-ला.।

सम्भवं कृमिकीटानां पिप्पलीमधुना सह।
अम्लेन रहितं स्वादु तन्मधुश्चादिदोषकृत्॥११॥

११. चापि-ला.।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते मधुवर्गः ॥

अथेदानीम् इक्षुगुणाः कथ्यन्ते-

स्निग्धश्च सन्तर्पणबृंहणश्च
सञ्जीवनः स्वादुरसः श्रमघ्नः।
वृष्यश्च पित्तास्रशमं नयेच्च
ह्यन्तर्विदाही कफकृत्सितेक्षुः॥१॥

सितेक्षु (सफेद ईख) स्निग्ध, सन्तर्पण, बृंहण, संजीवन, स्वादुरस व श्रमघ्न होता है। यह वृष्य होता है तथा पित्तरक्त को शान्त करता है। यह कुछ विदाही तथा कफकारक होता है।

।। सितेक्षुगुणाः ।।

तद्वत्सुकृष्णो हि भवेद् गुणैश्च
वृष्यो भवेत्तर्पणदाहहन्ता।
सक्षारकिञ्चिन्मधुरो रसेन
शोषापहर्ता व्रणशोफहर्ता।२।।

२. ०कर्त्ता-ला.।

सितेक्षु के समान गुणों वाला ही कृष्णेक्षु होता है। यह वृष्य, सन्तर्पण तथा दाहनाशक होता है। इसका रस मधुर होता है तथा साथ में कुछ खारापन लिए रहता है। यह शोषहर तथा व्रण व सूजन को ठीक करने वाला होता है।

पौण्ड्रको भीरुकश्चैव वंशकः श्वेतपोरकः।
कान्तारस्तापसेक्षुः स्यात्काष्ठेक्षुः सूचिपत्रकः।।३।।

३. पाण्डुको-ला.। वराहश्वेतपोतकः-ला.। सुपवित्रकः-ला.।

नेपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत्।
इत्येता जातयः स्थौल्याद् गुणान्वक्षाम्यतः परम्।।४।।

४. पौरो-ला.। इत्येते-ला.।

इक्षु के भेद इस प्रकार हैं- पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, श्वेतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काष्ठेक्षु, सूचिपत्रक, नेपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर व कोशकृत। ये संख्या में 12 हैं। इस प्रकार स्थूलता के आधार पर ये इक्षु की जातियाँ बताई गई हैं, अब इनके गुणों का वर्णन करते हैं-

सुशीतो मधुरः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलः सरः।
अविदाही गुरुर्वृष्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा।।५।।

५. श्लेष्मलो रसः-ला.।

पौण्ड्रक व भीरुक नामक इक्षु अति शीतल, मधुर, स्निग्ध, बृंहण,

कफकर, सर, अविदाही, गुरु व वृष्य होते हैं।

आभ्यां तुल्यगुणः किञ्चित्सक्षारो वंशको मतः।
वंशवच्छ्वेतपोरस्तु किञ्चिदुष्णः स वातहा॥६॥

६. ०दुष्णश्च वातहा–ना, ०दुष्णः स वातहा–आ.।
अन्ये तुल्यगुणाः केचित्०–ला.।

वंशक नामक इक्षु प्रायः इन्हीं गुणों के समान गुण वाला होता है, परन्तु इसमें कुछ खारापन भी होता है। श्वेतपोर नामक इक्षु वंशक के समान ही गुणों वाला होता है, परन्तु यह कुछ उष्ण व वातनाशक होता है।

कान्तारस्तापसेक्षुश्च वंशकानुगतौ मतौ।
एवंगुणस्तु काष्ठेक्षुः स तु वातप्रकोपनः॥७॥

७. ०गतो–ला.।

कान्तार व तापसेक्षु नामक दोनों इक्षुभेद पूर्ववर्णित 'वंशक' के समान गुण वाले होते हैं। काष्ठेक्षु नामक भेद भी इन्हीं के समान गुण वाला होता है, परन्तु वह कुछ वातप्रकोपकारक होता है।

सूचीपत्रो नीलपोरो नेपालो दीर्घपत्रकः।
वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः।
कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः॥८॥

८. ज्वरापहः–आ, क्षयापहः–ना.। पौरो–ला.।

सूत्रीपत्र, नीलपोर, नेपाल व दीर्घपत्रक नामक इक्षुभेद वातवर्द्धक, कफपित्तनाशक, कषायरसयुक्त व विदाही होते हैं। कोशकार नामक इक्षुभेद गुरु व शीतल होता है तथा रक्तपित्त व क्षयरोग को दूर करता है।

अतीव मधुरो मूले मध्ये मधुर एव च।
अग्रेषु त्रिषु विज्ञेय इक्षूणां लवणो रसः॥९॥

९. इक्षूता–ला.।

इक्षु (ईख) मूल में अति मधुर होता है, मध्य में मधुर होता है तथा अन्तिम तीन पोरों में लवण रसयुक्त होता है।

कफकृच्च विदाही च रक्तपित्तनिबर्हणः।
शर्करासमवीर्यस्तु दन्तनिष्पीडितो रसः॥१०॥

दाँतों से चूसा गया इक्षुरस कफकारक, विदाही एवं रक्तपित्तनाशक होता है। यह शर्करा के समान शीतवीर्य (ठण्डी तासीर वाला) होता है।

गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्तितः।
पक्वो गुरुरसः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत्॥११॥

यान्त्रिक (कोल्हू आदि गन्ना पीड़ने के यन्त्रों से निकाला गया) रस गुरु, विदाही व विष्टम्भी होता है। पकाया हुआ रस गुरु, स्निग्ध, अति तीक्ष्ण व कफवातनाशक होता है।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि मधुरं चैव बृंहणम्।
कफशुक्रकरं चैव पित्तघ्नं च विशेषतः॥१२॥

१२. गुरुमधुरमभिष्यदि च बृंहणम्-ला.। शुक्रकफकरं-ला.।

फाणित (राब) गुरु अभिष्यन्दी, मधुर व बृंहण होता है। यह कफ-शुक्र वर्द्धक होता है तथा विशेष रूप से पित्त का शमन करता है।

सक्षारो मधुरोऽति मूत्रबहुलो रक्तार्शसां शोधनो
मेदोमांसकरोऽतिपित्तशमनो वातस्य विष्टम्भनः।
श्लेष्माणं जनयेच्च बृंहणकरो बल्यः सदा स्वारकृत्
वातघ्नो विषहास्रपित्तशमनः सेव्यो विरेके गुडः॥१३॥

१३. रक्तार्शसां शोधनो-आ., रक्तस्य संशोधनो-अ.ना.ज.ला.।
बल्यः सदा स्वारकृत्-आ., बल्यास्रदोषापहा-ना.।
मेदोमांसकरोऽतिपित्तशामनो वातस्य विष्टम्भनः-आ.।
मेदोमांसकरोऽतिपित्तशामनो वातघ्नविष्टम्भजित्-अ.।
दाहोन्मादहरोऽतिपित्तशामनो वातघ्नविष्टम्भदः-ना.।
विरेके गुडः-अ.आ., विरेके सदा-ज.ना.ला.।
मेदोहानि०-ला.।
वातघ्न विष्टम्भिनः-ला.।
स्वास्थ्यकृत्-ला.।

गुड़ सक्षार (कुछ खारा), अति मधुर, बहुमूत्र लाने वाला, खूनी

बवासीर को शान्त करने वाला, मेदोमांसवर्द्धक, अति पित्तशामक, वातविष्टम्भ का निवारक, कफवर्द्धक, बृंहण, बल्य, ..., वातघ्न, विषनिवारक व रक्तपित्तनाशक होता है। ऐसे गुणों वाले गुड़ का सेवन करना योग्य है।

मत्स्यण्डिका सखण्डशर्करा विमलोत्तरोत्तरं स्निग्धा।
गुरुतरमधुरतरा वृष्यानिलरक्तपित्तनाशकरी॥१४॥

१४. विमलयोत्तरोत्तरा–ला.। गुरुरसमधूत्तराया–ला.। वृष्यारक्त०–ला.।

मत्स्यण्डिका, खण्ड व शर्करा– ये उत्तरोत्तर निर्मल, स्निग्ध गुरुतर व मधुरतर होती हैं तथा वृष्य, वातनाशक व रक्तपित्तनिवारक होती हैं।

यावती शर्करा प्रोक्ता सर्वा दाहप्रणाशनी।
रक्तपित्तप्रशमनी छर्दिमूर्छातृषापहा॥१५॥

१५. यावन्ती–ला.। सर्वदाहप्रणाशनी–ला.।

जितने भी प्रकार की शक्कर होती है, वह दाहनाशक, रक्तपित्तशामक तथा छर्दि, मूर्छा व तृषा को दूर करने वाली होती है।

रूक्षं मधुकपुष्पोत्थं फाणितं वातपित्तकृत्।
कफघ्नं मधुरं पाके कषायं बस्तिदूषणम्॥१६॥

१६ रूक्षा मधुकपुष्पोत्था फाणिता वातपित्तकृत्।
कफघ्ना मधुरा पाके विपाके बस्तिदूषणा॥ –ला.।

मधुक (महुआ) के फूलों से बना फाणित (राब) रूक्ष, वातपित्तकर, कफहर, विपाक में मधुर, कषाय व मूत्राशय को दूषित करने वाला होता है।

क्षत-क्षय-तृषा-दाह-रक्तपित्त-ज्वरापहा।
स्निग्धा वृष्या हिमा स्वादुः सक्षारा गुडशर्करा॥१७॥

गुडशर्करा (गुड़ से बनाई जाने वाली गुड़िया शक्कर) घाव, क्षय, तृषा, दाह, रक्तपित्त व ज्वर को दूर करती है। यह स्निग्ध, वृष्य, शीतल, मधुर व सक्षार (कुछ खारापन लिए) होती है।

गुडशर्करया तुल्या बस्तिशोधनपाचनी।
पित्तसंशमनी चैव रक्तपित्तनिबर्हणी॥१८॥

१८. पित्तशमनी-ला.। निर्बर्हणी-ला.।

मधुनः शर्करा चैव हिध्मातीसारनाशनी।
रूक्षा विच्छेदनी चैव कषायमधुरापि च॥१९॥

१९. मधुरा शर्करा-ना.।

गुडशर्करा के समान ही मूत्राशय का शोधन करने वाली व अन्नपाचन करवाने वाली मधुशर्करा होती है। यह पित्तसंशमनी तथा रक्तपित्त-निवारिणी होती है। मधुशर्करा हिचकी व अतिसार को दूर करती है। यह रूक्ष, कषाय-मधुरा तथा मलों व दोषों का विच्छेदन करने वाली होती है।

वृष्यः शीतोऽस्रपित्तं शमयति मधुरो बृंहणः श्लेष्मकारी
स्निग्धो हृद्यः सरश्च श्रमशमनपटुर्मूत्रशुद्धिं करोति।
मेदोवृद्धिं विधत्ते शमयति पवनं तर्पणं चेन्द्रियाणां
दन्तैर्निष्पीड्य साक्षादमृतमयरसो भक्षितादिक्षुदण्डात्॥२०॥

२०. मूत्रवृद्धिं-ला.। मलं-ला.। भक्ष्येदिक्षुदण्डम्-ला.।

इक्षुदण्ड को दाँतों से चबाकर चूसा गया साक्षात् अमृत रूप इक्षुरस वृष्य, शीतल, रक्तपित्तशामक, मधुर व बृंहण होता है। यह कफकारक, स्निग्ध, हृद्य, सर, थकान दूर करने वाला, पटु, मूत्रशुद्धि करने वाला होता है। इक्षुरस मेदोवृद्धि करता है, वात का शमन करता है तथा इन्द्रियों का तर्पण करता है।

कान्तारो रक्तवर्णः स्यात्कोशकारस्तथैव च।
श्वेतः सुपौण्ड्रको ज्ञेयस्त्रयः श्रेष्ठास्तथेक्षवः॥२१॥

२१. श्वेतस्तु-ला.।

कान्तार नामक इक्षु लाल वर्ण का होता है। इसी प्रकार 'कोशकार' नामक इक्षु लाल वर्ण का ही होता है। 'सुपौण्ड्रक' नामक इक्षु श्वेत वर्ण का होता है। इक्षु की ये तीन प्रजातियाँ श्रेष्ठ होती हैं।

मधुरो मूलभागे स्यान्मध्ये मधुर एव च।

अग्रभागे पुरस्तो यस्तस्य स्याल्लवणो रसः॥२२॥

२२. तस्माल्लवणो लघु-ला.।

इक्षु का मूल भाग विशेष रूप से मधुर होता है। मध्य भाग भी मधुर होता है। ऊपर की ओर जो अग्र भाग होता है, उसमें खारा रस रहता है।

भक्षयेदिक्षुकं काले भोजनस्याग्रतो नरः।
स्वभावान्मधुरोऽप्येष भुक्ते वातप्रकोपनः॥२३॥

ईख को भोजन से पहले चूसना चाहिए। भोजन के अनन्तर तो यह स्वभाव से मधुर होते हुए भी वात को प्रकुपित करता है।

विदाही विष्टम्भी गुरुरतितरां शोषशमनः
कफोत्क्लेशं कुर्यात्पवनजननश्छर्दिकरणः।
धृतः कञ्चित्कालं समलसहमूलाग्रदलनाद्
विकारी तेनायं न भवति हितो यान्त्रिकरसः॥२४॥

२४. दमनात्-आ., दलनाद्-अ.। जननं छर्दि०-ला.। सकल०-ला.।
विदाही-ला.। यान्त्रिकः रसः-ला.।

यन्त्र से निकाला इक्षुरस विदाही, विष्टम्भी, अतिगुरु तथा शोषहर होता है। यह कफोत्क्लेश (कफ का उभार) करता है, वातजनक व छर्दिकारक होता है। रस निकालते समय मलसहित मूल के साथ पीड़ने के कारण मलिन बना हुआ तथा कुछ काल तक रखने के कारण भी विकारयुक्त बना हुआ यान्त्रिक इक्षुरस हितकर नहीं होता है।

मूलमध्यदलनाच्च तत्क्षणात्पीयते यदि तु यान्त्रिको रसः।
वातपित्तशमनस्तथा भवेत्तर्पणश्च मलमूत्रशोधनः॥२५॥

25. तदा-ला.।

स्वच्छ किए मूल व मध्य भाग को पीड़कर निकाला गया यान्त्रिक रस यदि तत्काल पी लिया जाए तो यह वातपित्त शामक तथा तृप्तिकारक होता है। यह मलमूत्र का शोधन करता है। यहाँ इक्षु के ऊपरी भाग को पीड़ने का कथन नहीं किया गया है, क्योंकि वह लवणरसयुक्त होता है।

पित्तघ्नो पवनापहो रुचिकरो हृद्यस्त्रिदोषापहा

संयोगेन विशेषतो ज्वरहरः सन्तापशान्तिप्रदः।
विण्मूत्रामयनाशनोऽग्निजननः कण्डूप्रमेहान्तकृत्
स्निग्धः स्वादुरसो लघुः श्रमहरः पथ्यः पुराणो गुडः॥२६॥

पुराना गुड़ पित्तनाशक, वातहर, रुचिकर, हृद्य व त्रिदोषनिवारक होता है। यह उत्तम औषधियों के संयोग से ज्वरहर व सन्ताप (दाह) का निवारक बन जाता है। पुराना गुड़ मलमूत्र की शुद्धि करने वाला, जठराग्निदीपन, खुजली व प्रमेह का नाशक, स्निग्ध, स्वादुरस, लघु, श्रमहर (थकान-निवारक) व पथ्य होता है।

मूर्छामोहतृषास्यशोषशमनीदाहज्वरध्वंसिनी
श्वासच्छर्दिमदात्ययक्लमहरी हृद्या च सन्तर्पणी।
क्षीणे रेतसि पावके च विषमे क्षीणे क्षते दुर्बले
दुर्वारेऽपि च रक्तपित्तजगदे सेव्या सदा शर्करा॥२७॥

२७. क्षीणक्षते-ला.। रक्तजगदे-ला.।

२७. दाहं निवारयति पित्तमपाकरोति
तृष्णां छिनत्ति विनिहन्ति च मोहमूर्च्छाम्।
शोषं.......... तर्पयतीन्द्रियाणि
सीतः सदा समधुरः खलु शुद्धखण्डः॥ -ला.।

शर्करा मूर्छा, मोह, तृषा, आस्यशोष (मुंह सूखना) को दूर करती है। दाह, ज्वर, श्वास, छर्दि, मदात्यय (नशा), क्लम (इन्द्रियों की क्लान्ति) का निवारण करती है। यह हृद्य व सन्तर्पणी होती है। शुक्र की क्षीणता, जठराग्नि की विषमता तथा शरीर की दुर्बलता व चोट लगने या घाव होने पर यह लाभदायक होती है। प्रबल रक्तपित्त रोग होने पर शर्करा का सेवन हितकर होता है।

अक्षिजेषु विकारेषु सर्वेष्वपि मनोहरा।
समस्तरोगशमनी तवराजाक्षशर्करा॥२८॥

२८. राजास्पर्शकराः-ला.।

सभी नेत्र विकारों में 'तवराज' नामक शर्करा विशेषरूप से लाभदायक होती है। यह समस्त रोगों का शमन करती है।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ श्रीसुषेणकृते इक्षुवर्गः ।।

अथ मद्यवर्गः

आयुर्वेद में मद्य का वर्णन औषधीय रूप में है न कि नशा करने के लिए। अतः इसी दृष्टि से इस प्रकरण को देखना चाहिए। संहिताकार ऋषियों ने मदिरा के नशे को अतीव घातक, हानिकारक व जीवन का सर्वनाश करने वाला बताया है। चरक संहिता में कहा है-

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयो श्रेयो मोक्षे च यत्परम्।
मनःसमाधौ तत्सर्वमायत्तं सर्वदेहिनाम्।।
मद्येन मनसश्चास्य संक्षोभः क्रियते महान्।
महामारुतवेगेन तटस्थस्येव शाखिनः।। (च.सं.चि.-...)

इस लोक व परलोक से सम्बन्धित मनुष्य का जो भी कल्याण या शुभ है, वह मनःसमाधि (मन की एकाग्रता) पर निर्भर है। नशे के लिए मदिरापान करने वाले व्यक्ति का मन मदिरा द्वारा इस प्रकार संक्षुब्ध व अस्तव्यस्त कर दिया जाता है कि उसकी एकाग्रता व शुभ (कल्याण) को ग्रहण करने की सभी क्षमताएँ नष्ट हो जाती हैं। मद्यपान से उसका चित्त इस प्रकार से क्षुब्ध हो जाता है, जैसे भयंकर आँधी से नदीतीरवर्ती वृक्ष।

इससे स्पष्ट है कि नशा करने वाला सभी शुभ गुणों से वञ्चित होकर सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है। अतः आयुर्वेद में नशे के लिए मद्य का कठोरता से निषेध किया गया है। इस प्रकार यहाँ मद्य का वर्णन औषधीय उपयोग के लिए ही समझना चाहिए-

इदानीं मद्यगुणाः कथ्यन्ते-

सन्दीपनं रोचनहृद्यतीक्ष्णम्
उष्णं च तुष्टिप्रदपुष्टिदं च।
सुस्वादुतिक्तं कटुरूक्षमम्लं
पाके रसे सूक्ष्मसरं च मद्यम्॥१॥

१. मद्यमतीवतीक्ष्णम्-ला.। कटुकं तथाम्लम्-ला.। सरं संस्रवनीयमेतत्-ला.।

मद्य अग्निसंदीपन, रोचन, हृद्य, तीक्ष्ण, उष्ण, तुष्टिप्रद व पुष्टिप्रद होता है। यह सुस्वादु तिक्त, कटु, रूक्ष, पाक व रस में अम्ल, सूक्ष्म व सर गुण युक्त होता है।

काषायं स्वरतुष्टिदं बलकरं सश्वासकासापहं
वर्ण्यं चैव लघूष्णदुष्टजरणं निद्राभिवृद्धिप्रदम्।
पित्तासृग्गदकारकं च विहितं स्थौल्ये च कार्श्ये सरं
रूक्षं बस्तिविशोधनं रुचिकरं वातादिसंशोषणम्॥२॥
श्लेष्मघ्नं वरयुक्तियुक्तममृतं सेव्यं सदा प्राणिनाम्।

२. ०भेदनं-ला.।

मद्य काषाय (कषैला), स्वरतुष्टिकर, बलकर, श्वास-कासहर, वर्ण्य, लघु, उष्ण, दुष्टजरण (दोषयुक्त भोजन को भी पचाने वाला), निद्रावर्द्धक, पित्तरक्त, स्थौल्य व कृशता में हितकर, सर, रूक्ष, बस्ति शोधन, रुचिकर एवं वातादि दोषों का निवारक होता है।

मद्य कफनाशक होता है। यदि उत्तम युक्ति के साथ मात्रा में इसका सेवन किया जाए तो यह प्राणियों के लिए अमृततुल्य बन जाता है।

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम्।
सुस्वादु तिक्तकटुकमम्लपाकरसं सरम्॥३॥

मद्य दीपन, रोचन, तीक्ष्ण, उष्ण, तथा तुष्टिप्रद व पुष्टिकारक होता है। यह सुस्वादु, तिक्त, कटु, अम्ल तथा सर होता है। यह विपाक में भी अम्ल होता है।

सकषायं स्वरारोग्य-प्रतिभावर्णकृल्लघु।
नष्टनिद्रातिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम्॥४॥

मद्य कषायरसयुक्त तथा लघु होता है। यह स्वर को उत्तम बनाता है तथा प्रतिभा एवं वर्ण को निखारता है। जिनकी निद्रा नष्ट हो गई है अथवा जिन्हें अधिक नींद आती है, उनके लिए मद्य हितकर होता है। परन्तु यह पित्तरक्त को दूषित करता है।

कृशे स्थूले हितं रूक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम्।

वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं विषवदन्यथा॥५॥

मद्य कृश व स्थूल– इन दोनों के लिए हितकर होता है। यह रूक्ष, सूक्ष्म गुण युक्त, स्रोतों को शुद्ध करने वाला, वातश्लेष्महर होता है। युक्ति से पीने पर यह उक्त गुण करता है, परन्तु अयुक्ति से पीने वाले के लिए विषतुल्य बन जाता है।

गुरु त्रिदोषजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा।
पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः।
नात्यर्थतीक्ष्णं मृद्वल्पसम्भारं कलुषं न च॥६॥

नया मद्य गुरु व त्रिदोषजनक होता है। पुराना मद्य इसके विपरीत लघु व त्रिदोषहर बन जाता है। उष्ण वस्तुओं के योग में अथवा शरीर की उष्णता में मद्यपान नहीं करना चाहिए। विरिक्त (विरेचन ले चुके) व्यक्ति को तथा भूखे व्यक्ति को मद्यपान नहीं करना चाहिए। बहुत तीक्ष्ण मद्य नहीं पीना चाहिए। बहुत तेज मसालों के साथ मद्य नहीं पीना चाहिए, अपितु मृदु (अतीक्ष्ण) व अल्प सम्भार मसालों के साथ मद्य पीना चाहिए। कलुष (मलिन) मद्य भी नहीं पीना चाहिए।

गुल्मोदरार्शोग्रहणीशोफहृत् स्नेहनी गुरुः।
सुरानिलघ्नी मेदोऽसृक्स्तन्यमूत्रकफापहा॥७॥

सुरा मद्य का ही एक भेद है। यह गुल्म, उदर रोग, अर्श, ग्रहणी व शोफ (सूजन) को दूर करती है। यह स्नेहनी (स्निग्धता पैदा करने वाली), गुरु, वातनाशक, मेदोनाशक (चर्बी कम करने वाली) तथा रक्त, स्तन्य, मूत्र व कफ को क्षीण करने वाली होती है।

तद्गुणा वारुणी हृद्या लघुतीक्ष्णा निहन्ति च।
शूलकासारुचि-श्वास-विबन्धाध्मान-पीनसान्॥८॥

(इति बगनीगुणाः)

वारुणी भी मद्य का एक भेद है। यह भी पूर्वोक्त सुरा के समान गुणों वाली, हृद्य, लघु व तीक्ष्ण होती है। वारुणी शूल, कास, अरुचि, श्वास, विबन्ध, आध्मान व पीनस को नष्ट करती है।

ग्राह्युष्णो जगलो रूक्षः पाचनः शोफनाशनः।
नातितीव्रमदा लघ्वी पथ्या वैभीतिकी सुरा॥९॥

मद्य का एक अन्य भेद जगल है। यह ग्राही, उष्ण, रूक्ष, पाचन व शोफनाशक होता है। विभीतक (बहेड़े) से बनाई हुई शराब अधिक तीव्र नशा नहीं करती है। यह लघु व पथ्य होती है।

व्रणे पाण्ड्वामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते।
विष्टम्भिनी यवसुरा गुर्वी रूक्षा त्रिदोषला॥१०॥

(इति यवसुरागुणाः)

यवसुरा (जौ से बनी सुरा) व्रण, पाण्डुरोग, कुष्ठ में अधिक हानिकारक नहीं होती है। यह विष्टम्भकरी, गुरु, रूक्ष व त्रिदोषकारक होती है।

यथाद्रव्यगुणोऽरिष्टः सर्वमद्यगुणाधिकः।
ग्रहणीपाण्डुकुष्ठार्शःशोषशोफोदरज्वरान्।
हन्ति गुल्मकृमिप्लीह कषायं कटु वातलम्॥११॥

(इति अरिष्टगुणाः)

जिस द्रव्य का जो गुण है, उसी गुण वाला उसका अरिष्ट होता है। अरिष्ट ग्रहणी, पाण्डुरोग, कुष्ठ, अर्श, शोष, शोफ, उदररोग व ज्वर को दूर करता है। यह गुल्म, कृमि व प्लीहा विकार को दूर करता है। अरिष्ट कषाय व कटु होता है तथा वात को बढ़ाता है।

माध्वीकं लेखनं हृद्यं नात्युष्णं मधुरं सरम्।
अम्लपित्तानिलपाण्डु-मेहार्शःकृमिनाशनम्॥१२॥

(इति द्राक्षासवगुणाः)

अल्पपित्तानिलं-आ., अम्लपित्तानिलपाण्डु-ना.

माध्वीक (मार्द्वीक अर्थात् मुनक्का से बना मद्य) लेखन, हृद्य, मधुर व सर होता है। यह अति उष्ण नहीं होता है। माध्वीक अम्लपित्त, वातविकार, पाण्डुरोग, प्रमेह, अर्श व कृमियों को नष्ट करता है।

सृष्टमूत्रशकृद्वातो गौडस्तर्पणदीपनः। (इति गुडासवगुणाः)

वातपित्तकरः सीधुः स्नेहश्लेष्मविकारहा॥१३॥ (इति सीधुगुणाः)

गुड़ से बना आसव अधिक मलमूत्र करने वाला, वातविकार करने वाला तथा तर्पण व दीपन होता है। सीधु (सिरका) वातपित्तवर्द्धक होता है तथा स्नेह को नष्ट करने वाला तथा कफविकार को दूर करने वाला होता है।

मेदःशोफोदरार्शोघ्नस्तत्र पक्वरसो वरः।
छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित्॥१४॥

(इति मध्वासवगुणाः)

....

... मध्वासव छेदी व तीक्ष्ण होता है तथा प्रमेह, पीनस व कास को दूर करता है।

रक्तपित्तकफोत्क्लेदी शुक्तं वातानुलोमनम्।
भृशोष्णतीक्ष्णरूक्षाम्लं हृद्यं रुचिकरं सरम्॥१५॥
दीपनं शिशिरस्पर्शं पाण्डुहृत् कृमिनाशनम्।
गुडेक्षु-मधु-माध्वीकशुक्तं लघु यथोत्तरम्॥१६॥

शुक्त (सिरका) रक्तपित्त व कफ का उत्क्लेदन करने वाला, वात का अनुलोमन करने वाला, बहुत गर्म, तीक्ष्ण, रूक्ष, अम्ल, हृद्य, रुचिकर व सर होता है। यह दीपन, शीतल स्पर्श वाला, पाण्डुरोग नाशक व कृमिहर होता है। गुड़, ईख, मधु व माध्वीक (मुनक्का) से बनाए सिरके क्रमशः उत्तरोत्तर लघु होते हैं।

कन्दमूलफलाढ्यं च तद्वद् विद्यात्तदासुतम्।
साण्डाकी चासुतं चान्यत्कालाम्लं रोचनं लघु॥१७॥

उसी प्रकार कन्द, मूल व फलों से युक्त जो सिरका बनाया जाता है, उसे आसुत कहते हैं। साण्डाकी ....

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते मद्यवर्गः ॥

इदानीं काञ्जिकवर्गः कथ्यते

धान्याम्लं भेदि तीक्ष्णं रुचिकरजरणं सोष्मसंस्पर्शशीतं
रूक्षं चैव क्लमघ्नं श्रमहरविशदं बस्तिसंशोधनं च।
शस्तं चास्थापने स्याल्लघुकफपवनश्वासशूलापनोदि
गण्डूषैर्धारणात् स्यान्मुखमलजडतागन्धनिर्नाशनं च॥१॥

रुचिकरजरणं–आ., सुरभिलघुतरं–ज.ना। कृमिघ्नं–आ.को., क्लमघ्नं–अ.। मुखमलजडता0–आ., मुखगदनिवहे0–ज.

धान्याम्ल भेदी, तीक्ष्ण, रुचिकर, पाचक, उष्ण, स्पर्श में शीतल, रूक्ष, क्लमघ्न, श्रमहर, विशद गुण युक्त व बस्ति (मूत्राशय) का शोधन करने वाला होता है। यह आस्थापन बस्ति के लिए हितकर व लघु होता है। कफ, वात, श्वास व शूल को हरता है। मुख में काञ्जी का गण्डूष-धारण करने से मुख की मलिनता, जड़ता व दुर्गन्ध का निवारण होता है।

धान्याम्लं भेदितीक्ष्णोष्णं पित्तकृत्स्पर्शशीतलम्।
श्रमक्लमहरं रुच्यं दीपनं बस्तिशोधनम्॥२॥

शस्तमास्थापने हृद्यं लघुवातकफापहम्।
गण्डूषधारणाद्वक्त्र-मलदौर्गन्ध्यदोषजित्॥३॥

स्रग्धरा छन्द में निबद्ध पूर्व श्लोक में किया गया वर्णन ही पुनः अनुष्टुप् छन्द में इन श्लोकों द्वारा प्रस्तुत किया है। इनका अर्थ पूर्ववत् ही है।

शूलवातार्दितानां च आमाजीर्णे विबन्धके।
श्रेष्ठं प्रोक्तं तुषाम्लं तु गुणाधिक्यंतरेषु च॥४॥

शूल (दर्द) व वातप्रकोप, आमाजीर्ण व विबन्ध में तुषाम्ल (काञ्जिक) श्रेष्ठ माना जाता है।

शोफमूर्छाज्वरार्तानां कृमिगण्डूविषाशिनाम्।
कुष्ठिनां रक्तपित्तानां काञ्जिकं न प्रशस्यते॥५॥

शोफ (सूजन), मूर्छा, ज्वर, कृमि, कण्डू (खुजली) व विषविकार

से पीड़ित व्यक्तियों के लिए तथा कुष्ठ व रक्तपित्त से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए कांजी उत्तम नहीं होती है।

पाण्डुरोगे च यक्ष्मे च तथा शोफातुरेषु च।
क्षतक्षीणपथश्रान्ते मन्तेमन्दक्षरनिपीडिते।
एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम्॥६॥

पाण्डुरोग, यक्ष्मा, सूजन, क्षतक्षीण रोग, मार्ग चलने से हुई थकान में कांजी हितकारक नहीं होती, प्रत्युत हानिकारक ही होती है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते काञ्जिकवर्गः ॥

अथ मूत्रवर्गः

औष्ट्रं गोजाविजातं हयगजमहिषीरासभोत्थं च मूत्रं
तिक्तं तीक्ष्णं लघूष्णं सलवणकं पित्तलं भेदि रूक्षम्।
हृद्यं रुच्यं कृमिघ्नं हुतवहजननं कुष्ठमेदोनिवारि
गुल्मानाहर्शशूलानिलकफविषजिच्छोफपाण्डूदरघ्नम्॥१॥

उष्ट्र, गाय, भेड़, अजा, घोड़ा, हाथी, भैंस व रासभ (गर्दभ) का मूत्र औषधीय प्रयोग योग्य होता है। इनका मूत्र तिक्त, तीक्ष्ण, लघु, उष्ण, लवण सहित पित्तल, भेदी व रूक्ष होता है। यह हृदय के लिए हितकर, रुच्य, कृमिनाशक, जठराग्निवर्द्धक, कुष्ठहर, मेदोनाशक होता है। मूत्र से गुल्म, आनाह, अर्श, शूल, वातविकार, कफविकार व विषविकार का निवारण होता है। इससे सूजन, पाण्डुरोग व उदररोग नष्ट होते हैं।

मूत्रं विषाष्टादशकुष्ठशोथ-
पाण्डूदरोन्मादकफामयघ्नम्।
गव्यं निहन्त्यास्यविकारमर्शो
रूक्षं तथोष्णं कृमिषु प्रशस्तम्॥२॥

मूत्र विष के प्रभाव को दूर करता है तथा 18 प्रकार के कुष्ठ रोगों को नष्ट करता है। यह शोथ, पाण्डुरोग, उदररोग, उन्माद व कफजन्य रोगों को दूर करता है। गाय का मूत्र मुख के विकार व अर्श रोग को नष्ट करता है। यह रूक्ष व उष्ण होता है तथा कृमिनिवारण के लिए उत्तम

माना जाता है।

तीक्ष्णं चोष्णं <u>क्षारमेवं</u> कषायं
गव्यं मेध्यं श्लेष्मवातं निहन्ति।
रक्तं पित्तं <u>कुर्वते</u> वा प्रभेदि
गुल्मानाहोदर्यरोगोपमर्दि॥३॥　　इति गोमूत्रम्।

गोमूत्र (गाय का मूत्र) तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार व कषाय होता है। यह मेधा के लिए हितकर तथा कफवात-नाशक होता है। यह रक्तपित्तजनक, प्रभेदी होता है तथा गुल्म, आनाह व उदररोगों का उपमर्दन (नाश) करने वाला होता है।

कुष्ठकफहरं रूक्षं कृमिदद्रुविनाशनम्।
श्रेष्ठं कुष्ठोदरोन्मादे शोफार्शःकृमिवातनुत्॥४॥ -उष्ट्रमूत्रम्।

उष्ट्रमूत्र कुष्ठहर, कफनाशक तथा रूक्ष होता है। यह कृमि व दद्रु (दाद) को नष्ट करता है। कुष्ठ, उदररोग व उन्माद में उत्तम होता है तथा शोफ, अर्श, कृमि एवं वातविकार को दूर करता है।

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं
योज्यं पाने शूलगुल्मार्तिनाशम्।
कासे श्वासे कामलापाण्डुरोगे
अर्शोरोगे श्रेष्ठमेतद्वदन्ति॥५॥　　इत्याजं मूत्रम्।

बकरी का मूत्र तीक्ष्ण, उष्ण, कषाय होता है तथा पान योग्य माना जाता है। यह शूल, गुल्म, कास, श्वास, कामला व पाण्डुरोग को नष्ट करता है तथा अर्श (बवासीर) के लिए उत्तम माना जाता है।

सक्षारं कटुकं तिक्तं मूत्रं वातघ्नमाविकम्।
दुर्नामोदरशूलघ्नं कुष्ठमेहविनाशनम्॥६॥　　इति मेषीमूत्रम्।

भेड़ का मूत्र सक्षार, कटु, तिक्त व वातनाशक होता है। यह दुर्नाम (बवासीर), उदररोग, शूल, कुष्ठ व प्रमेह को दूर करता है।

क्षारं सतिक्तं कटुकं कषायं

प्रभेदि वातस्य शमं करोति।
पित्तप्रकोपं कुरुतेऽथ गुल्मं
कुष्ठार्शपाण्डूदरशूलनाशनम्॥७॥ इति माहिषं मूत्रम्

भैंस का मूत्र क्षार, तिक्त, कटु, कषाय व मल का भेदन करने वाला तथा वातशामक होता है। यह पित्तप्रकोप करता है तथा गुल्म, कुष्ठ, अर्श, पाण्डुरोग, उदररोग व शूल का नाश करता है।

सतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम्।
क्षारं मण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम्॥८॥ इति गजमूत्रम्

गजमूत्र (हाथी का मूत्र) तिक्तरसयुक्त, खारा, मल का भेदन करने वाला, वातनाशक व पित्त प्रकोपक होता है। यह क्षारगुणयुक्त होता है तथा मण्डलकुष्ठ का नाशक होता है।

गर्दभं वा हयं मूत्रं तैलयोग्यं क्वचिद् भवेत्।
सक्षारं कटुकं तिक्तमुन्मादकुष्ठरोगजित्॥९॥ इति गर्दभहयमूत्रम्

गधे व घोड़े का मूत्र औषधीय तेल बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। यह खारा, कटु व तिक्त होता है तथा उन्माद व कुष्ठरोग को दूर करता है।

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते।
चक्षूरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम्॥१०॥ इति नरमूत्रम्

मनुष्य का मूत्र क्षार, कटु, मधुर व लघु होता है। यह नेत्ररोगहर, बल्य, दीपन व कफनाशक होता है।

असूताया घनं मूत्रं प्रसूताया द्रवं लघु।
न किं गुणविशेषः स्यात्समतापाकवीर्ययोः॥११॥

अप्रसूता-प्रसूतामूत्रम्

अप्रसूता गाय का मूत्र घन (गाढ़ा) होता है तथा प्रसूता गाय का मूत्र द्रव (पतला) व लघु होता है। इनमें गुण का विशेष भेद नहीं होता है। इनके विपाक व वीर्य में भी समानता होती है।

सौरभेयकमूत्रं तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते।
तच्च वृषणहीनानां किञ्चिल्लघुतरं मतम्॥१२॥

सौरभेयक (बैल) का मूत्र सघन व सान्द्र रूप में उत्तम गुणों से युक्त माना जाता है। वृषण (अण्डकोश) रहित बैल का मूत्र कुछ हल्का होता है।

वृषमूत्रं तु शोफघ्नं कृमिदोष-विनाशनम्।
कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनं चाग्निदीपनम्॥१३॥

बैल का मूत्र शोफनाशक व कृमिहर होता है। यह कामला ग्रहणी व पाण्डुरोग को नष्ट करता है तथा जठराग्नि को दीप्त करता है।

अजागवीगतं मूत्रं पाने शस्तं भिषग्वर!
आविकं माहिषं वाश्वं तैलपाके विधीयते॥१४॥

बकरी और गाय का मूत्र पान योग्य व उत्तम गुणकारी होता है। भेड़, भैंस व घोड़े का मूत्र पान योग्य नहीं होता अपितु तैलपाक में ही प्रयुक्त होता है।

गजमूत्रं प्रलेपेन कण्डुदद्रुविसर्पनुत्।
कारभं खरमूत्रं वा तैले नस्ये विधीयते॥१५॥

हाथी का मूत्र लेपन करने से खुजली, दाद व विसर्प को दूर करता है। ऊँट व गधे का मूत्र तैलपाक में प्रयुक्त होता है अथवा नस्य के रूप में भी काम आता है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते मूत्रवर्गः ॥

अथेदानीं धान्यगुणाः कथ्यन्ते

स्निग्धो वातहरस्त्रिदोषशमनः पथ्यं सदा प्राणिनां
श्रेष्ठो व्रीहिषु षष्टिकः श्रमहरः कृच्छ्रादिदोषापहः।
गौरश्च शितगौरतोऽपि नितरां सेव्यः करोत्युच्चकैः
शुक्रं श्वासहरः क्षतक्षयहरः कासादिदोषापहः॥१॥

षष्टिक नाम धान्य स्निग्ध, वातहर, त्रिदोषशामक व प्राणियों के लिए

पथ्य होता है। यह सभी व्रीहियों में श्रेष्ठ माना जाता है तथा श्रमहर व मूत्रकृच्छ्रनिवारक होता है। शितषष्टिक (कृष्ण षष्टिक) से गौरषष्टिक (श्वेत षष्टिक) अधिक गुणकारी होता है। अतः विशेषरूप से सेवन योग्य है। यह अत्यधिक शुक्रवर्द्धक, श्वासरोगशामक, क्षत व क्षयरोग का हरण करने वाला तथा कासादि दोषों को नष्ट करने वाला होता है।

रसे पाके स्वादुः पवनकफपित्तप्रशमनो
ज्वरे जीर्णे पथ्यः सकलजठरक्षोभहरणः।
शिशूनां वृद्धानां नृपतिसुकुमारातिसुखिनाम्
अयं सेव्यो रक्तो भवति हि महाशालिरमलः॥२॥

महाशालि रस व विपाक में स्वादु होता है। यह वात, पित्त एवं कफ को शान्त करता है, जीर्ण ज्वर में पथ्य होता है। उदर के सर्वविध क्षोभ (पित्तजन्य बेचैनी) को दूर करता है। दोषों से रहित महाशालि नामक यह धान्य शिशु, वृद्ध, राजा आदि सुकुमार व सुखोचित जनों के लिए विशेष रूप से सेवन योग्य होता है।

देशे देशे च ये जाता नानावर्णाश्च व्रीहयः।
तेषां श्वेतः प्रधानोऽसौ त्रिदोषशमनः परम्॥३॥ परे-अ.

देश-देशान्तर में जो नाना वर्ण वाले व्रीहि पाये जाते हैं, उनमें श्वेत व्रीहि प्रधान माना जाता है। यह विशेष रूप से त्रिदोषशामक होता है। अतः स्वास्थ्य के लिए विशिष्ट रूप से उपयोगी होता है।

रक्तो भीरुकपुण्डरीककलमस्तूर्णो महापुष्पको
दीर्घः काञ्चनहायनोऽसितसितः पुष्पाण्डकः पाण्डुकः।
पुण्ड्राख्यस्तपनीयकः शकुनको लोध्रस्तु सौगन्धिकः
इत्याद्याः सपतङ्गदूषकयुता हृद्याः शुभा शालयः॥४॥

रक्त, भीरुक, पुण्डरीक, कलम, तूर्णक, महापुष्पक, दीर्घ, काञ्चन, हायन, असितसित, पुष्पाण्डक, पाण्डुक, पुण्ड्र, तपनीयक, शकुनक, लोध्र, सौगन्धिक, पतंग व दूषक इत्यादि व्रीहियों के भेद प्रसिद्ध हैं, जो वाग्भट आदि के अष्टांगसंग्रह इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हैं। ये हृदय को प्रिय

लगने वाले और शुभ माने जाने वाले शालि होते हैं।

स्वर्या बृंहणजीवना बलकरा स्निग्धास्त्रिदोषापहाः
शुक्रश्लेष्मविवर्धना रुचिकराः सन्दीपनास्तर्पणाः।
पथ्याः सर्वगदे हिताः श्रमहराः क्षुट्तृट्श्रमध्वंसकाः
श्रेष्ठा व्रीहिषु षष्टिकाः कलमको रक्तो महान् शालिषु॥५॥

षष्टिक नामक धान्य स्वर के लिए हितकर, बृंहण, जीवन, बलकर, स्निग्ध, त्रिदोषहर, शुक्र व कफ को बढ़ाने वाला, रुचिकर, सन्दीपन व तर्पण होता है। यह सभी रोगों में पथ्य होता है तथा थकान, भूख, प्यास को दूर करता है। इस प्रकार षष्टिक धान्यों में श्रेष्ठ होता है। इसी के समान कलमशालि, लोहितशालि व महाशालि भी उत्तम होते हैं।

रोचनास्तर्पणा हृद्या श्लेष्मला पित्तपाचनाः।
गुरवो बृंहणाः पथ्याः नानाजातीयशालयः॥६॥

नाना प्रकार के शालि रुचिकर, तर्पण, हृदय के लिए हितकर, कफवर्द्धक, पित्त को पचाने वाले, गुरु, बृंहण व पथ्य होते हैं।

पतङ्गो मधुरो हृद्यो स्वादुः सञ्जीवनो लघुः।
वृष्यो बलप्रदो हन्यात् सघृतोऽसौ मलत्रयम्॥७॥

पतङ्ग नामक शालि मधुर, हृद्य, स्वादु, संजीवन व लघु होता है। यह वृष्य व बलप्रद होता है तथा घृत के साथ सेवन करने से तीनों दोषों का शमन करता है।

शाल्यन्नं कफवातघ्नं स्वादु पित्तनिवारणम्।
रूपशुक्रमहातेजः-सत्त्वबुद्धिबलप्रदम्॥८॥

८. शाल्यन्नं-आ., राजान्नं-ने.।

शाल्यन्न (पका चावल) कफ-वातनाशक, स्वादु व पित्तनिवारक होता है। यह रूप, शुक्र, महातेज, सत्त्व, बुद्धि व बल को बढ़ाता है।

कृष्णशालिस्त्रिदोषघ्नो मधुरो रसपाकयोः।
पित्तघ्नः पिच्छिलः शुक्ररूपवर्णबलप्रदः॥९॥

कृष्णशालि त्रिदोषहर तथा रस व विपाक में मधुर होता है। यह

पित्तघ्न व पिच्छिल होता है तथा शुक्र, रूप, वर्ण व बल का वर्द्धक होता है।

एते शालिगुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्याः शास्त्रकोविदैः।
सर्वं धान्यं तृणानां च कुष्ठरोगविनाशनम्॥१०॥

आयुर्वेदशास्त्र के ज्ञाता मनीषियों ने ये सारे गुण शालियों के बताए हैं। सभी प्रकार के तृणधान्य कुष्ठरोग-नाशक होते हैं।

सर्वव्याधिहरं शीघ्रं मुखशोधनमेव च॥

तृणधान्य सर्वरोगहर एवं मुखशोधक माना जाता है।

॥ इति शालिगुणाः ॥

अथ शूकधान्यवर्गः

उष्णा रूक्षतराः कषायमधुरा पाके लघुत्वात्तथा
श्लेष्मघ्नाः पवनाल्पपित्तजनका विष्टम्भिनः सर्वदा।
श्यामाकादिकुधान्यलक्षणमिदं प्रोक्तं नृणामल्पतः
सम्यग्वै बलशालिनां च सुखिनामल्पोपयोगान्मया॥११॥

श्यामाक आदि कम गुण वाले कुत्सित (निन्दित) धान्य, समृद्ध, राजा व सुखी श्रेष्ठी आदि के लिए अल्पोपयोगी होते हैं। अतः उनका संक्षिप्त विवरण ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्यामाक आदि धान्य उष्ण, रूक्षतर, कषाय, मधुर व विपाक में लघु होने के कारण कफनाशक, वातकारक एवं कुछ पित्तजनक तथा विष्टम्भी होते हैं।

॥ इति शूकधान्यवर्गः ॥

अथ शिम्बिधान्यगुणाः कथ्यन्ते-

मुद्गः पित्तकफापहो व्रणहरः कण्ठामयघ्नो लघुः
शीतश्चापि विरिक्तजन्तुषु तथा नेत्रामये सर्वदा।
नैवाध्मानकरो न चानिलकरो मन्देऽनले शस्यते
सूपानामपि चोत्तमः स्वरकरो मूत्रामयच्छेदनः॥१२॥

तथानिलहरो-आ., न चानिलहरो-अ.

मूंग पित्तकफ-नाशक, व्रणहर, कण्ठरोग-निवारक, लघु व शीतल होता है। यह विरिक्त अर्थात् दस्त से पीड़ित व नेत्ररोग वाले व्यक्ति के लिए हितकर होता है। यह आध्मानजनक व वातकारक नहीं होता है, मन्दाग्नि में उपयोगी माना जाता है। यह कण्ठस्वर को उत्तम करने वाला व मूत्ररोगहर होता है तथा सूप्य (दलहनों) में उत्तम माना जाता है।

।। इति मुद्गगुणाः ।।

अथ माषगुणाः कथ्यन्ते-

माषः स्निग्धो मलबलकरो पोषणः श्लेष्मकारी
वीर्ये चोष्णो झटिति कुरुते रक्तपित्तप्रकोपम्।
हन्याद्वातं गुरुरति सरो रोचनो भक्ष्यमाणः
स्वादुर्नित्यं श्रमसुखजुषां सेवनीयो नराणाम्॥१३॥

माष (उड़द) स्निग्ध, मल व बल को बढ़ाने वाला, पुष्टिकारक, कफवर्द्धक, उष्णवीर्य होता है तथा शीघ्र ही रक्तपित्त-प्रकोप कर देता है। यह वातनाशक, गुरु व सर होता है तथा खाने में रुचिकर व स्वादु होता है। जो श्रमशील (व्यायाम करने वाले) व सुखी अर्थात् निरोग हों, उनके लिए यह सेवनीय है। श्रम न करने वाले या मन्द जठराग्नि वाले व्यक्ति को इसके सेवन से बचना चाहिए, क्योंकि यह पचने में भारी होने से भूख कम कर देता है।

माषो गुरुर्भिन्नपुरीषमूत्रः
स्निग्धोष्णवीर्यो मधुरोऽनिलघ्नः।
सन्तर्पणः स्तन्यकरो विशेषाद्
बलप्रदः शुक्रकफावहश्च॥१४॥

माष (उड़द) गुरु, मूत्र व पुरीष का भेदन करने वाला, स्निग्ध, उष्णवीर्य, मधुर व वातनाशक होता है। यह सन्तर्पण, स्तन्यकर (माताओं का दूध बढ़ाने वाला) तथा विशेष रूप से बलकारक एवं शुक्र व कफ को बढ़ाने वाला होता है।

कषायभावान्न पुरीषभेदी

न मूत्रलो नैव बलासकर्ता।
स्वादुर्विपाके <u>मधुरो</u>ऽलसान्द्रः गृहजो-आ., मधुरो-ना.।
सन्तर्पणस्तन्यरुचिप्रदश्च॥१५॥

अलसान्द्र (चौंळा) कषाय होने से मलभेदी नहीं होता और न ही मूत्रल व कफकारक होता है। यह विपाक में मधुर होता है तथा सन्तर्पण, स्तन्यवर्द्धक (माता के दूध को बढ़ाने वाला) व रुचिकर होता है।

रौक्ष्याच्च शैत्यात्पवनस्य कर्ता
वैशद्यकृच्चापि हि राजमाषः।
माषैः समानं फलमात्मगुप्तम्
उक्तं च काकाण्डफलं तथैव॥१६॥

राजमाष (राजमा) रूक्षता व शीतलता के कारण वातकारक व विशद गुण से युक्त होता है। आत्मगुप्त अर्थात् कौंच का फल भी उड़द के समान गुण वाला होता है। उसी प्रकार काकाण्ड फल के गुण भी उड़द जैसे ही होते हैं।

॥ इति माषवर्गः ॥

अरण्यमाषा गुणतः प्रदिष्टा
रूक्षा कषाया अविदाहिनश्च।
वातप्रकोपं प्रशमं नयन्ति
<u>तैलाक्तमेते विभवाः</u> प्रदिष्टाः॥१७॥

जंगली माष (उड़द) रूक्ष, कषाय व अविदाही होते हैं। ये वातप्रकोप को शान्त करते हैं। ....
....

॥ इति अरण्यमाषगुणाः ॥

अथ कुलत्थगुणाः

उष्णः कुलत्थो रसतः कषायो
कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः।

शुक्राश्मरीगुल्मनिषूदनश्च
संग्राहिकः पीनसकासहारी॥१८॥
संग्राहकः-ना.,संग्राहिकः-आ.

कुलत्थ उष्ण गुण वाला तथा कषाय रस वाला होता है। यह विपाक में कटु होता है एवं कफवात को नष्ट करता है। कुलत्थ शुक्राश्मरी, गुल्मरोग का नाशक, संग्राही तथा पीनस व कास का निवारक होता है।

आनाहमेदोगुदकीलहिक्का-
श्वासापहः शोणितपित्तकृच्च।
कफस्य हन्ता नयनामयघ्नो
विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः॥१९॥

वन्य (जंगली) कुलत्थ आनाह, मेद, अर्श, हिक्का व श्वास रोग को दूर करता है। यह रक्तपित्तजनक, कफनिवारक तथा नेत्ररोगहर होता है। वन्य कुलत्थ में ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं।

॥ चवळी ॥

राजमाषः सरो रुच्यः कफशुक्रघ्नपित्तकृत्। हृत्-आ., कृत्-अ.
सुस्वादुर्वातलो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः॥२०॥
कफशुक्रामपित्तनुत्-ना, कफशुक्रघ्नपित्तकृत्-अ.।

राजमाष (राजमा) सर, रुच्य, कफशुक्रनाशक व पित्तकर होता है। यह सुस्वादु, वातल, रूक्ष, कषाय, विशद व गुरु होता है।

॥ राजमाषः ॥

रूक्षः कषायो विषशोफशुक्र-
बलासदृष्टिक्षयकृद्विदाही।
कटुर्विपाके मधुरश्च शिम्बः
प्रभिन्नविण्मारुतपित्तलश्च॥२१॥

मधुर शिम्ब रूक्ष, कषाय, विष, शोफ, शुक्र, कफ, दृष्टि का क्षय करने वाला, विदाही, विपाक में कटु व मलमूत्र का भेदन करने वाला होता

है। यह वातपित्तवर्द्धक होता है।

सिताऽसिता पीतकरक्तवर्णा
भवन्ति येऽनेकविधास्तु शिम्बाः।
यथोदितास्ते गुणतः प्रधाना
ज्ञेया कटूष्णा रसपाकयोश्च॥२२॥

कुछ अन्य शिम्ब श्वेत, कृष्ण, पीत व रक्तवर्ण के होते हैं। वे पूर्वोक्त गुणों वाले ही समझने चाहिए। वे सब रस व विपाक में कटु एवं उष्ण होते हैं।

॥ वल्लभेदाः ॥

फलं तु वल्लीशिम्बस्य मात्रं दोषकरं गुरु।
पित्तलं स्वादु तिक्तं च कुष्ठपामाहरं परम्॥
विषघ्नं दीपनं चोष्णं कृमिघ्नमनिलापहम्॥२३॥

वल्लीशिम्ब का फल अल्पदोषकारक व गुरु होता है। यह पित्तल, स्वादु, तिक्त व विशेष रूप से कुष्ठ व पामा (खुजली) को दूर करने वाला होता है। वल्लीशिम्ब विषघ्न, दीपन, उष्ण, कृमिघ्न व वातनाशक होता है।

॥ मण्डपवल्लः ॥

ईषत्कषायो मधुरः सतिक्तः
संग्राहिकः पित्तकरस्तथोष्णः।
तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः
स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य एव॥२४॥

काला तिल थोड़ा कषाय, मधुर व कुछ तिक्त गुण वाला होता है। यह संग्राही, पित्तकर व उष्ण होता है। यह विपाक में मधुर, बलप्रद एवं स्निग्ध होता है तथा घावों पर लगाने से बहुत हितकारी होता है।

॥ कृष्णतिलः ॥

दन्त्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रः

त्वच्योऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च।
तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो
मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये॥२५॥

काला तिल दन्त्य (दांतों के लिए हितकर), जठराग्निवर्द्धक, मेधा-जनक, मूत्र की मात्रा कम करने वाला, त्वचा व केशों के लिए हितकारी, वातनाशक व गुरु होता है। सभी तिलों में काला तिल उत्तम माना जाता है। श्वेत तिल गुणों की दृष्टि से मध्यम होता है तथा अन्य तिल इन दोनों से हीन गुण वाले होते हैं।

॥ इति श्वेततिलः ॥

अथानन्तरयवगुणाः

यवः कषायो मधुरो हिमश्च
कटुर्विपाके कफपित्तहारी।
व्रणेषु पथ्यस्तिलवच्च नित्यं
प्रबद्धमूत्रो बहुवातवर्चा॥२६॥

यव (जौ) कषाय, मधुर, शीतल, विपाक में कटु तथा कफपित्तनाशक होता है। यह व्रण (घाव) होने पर तिल के समान ही पथ्य होता है। यह मूत्र को बढ़ाने वाला तथा वात एवं मल को भी बढ़ाने वाला होता है।

स्थैर्याग्निमेधाबलवर्णकृच्च
सपिच्छिलः स्थूलविलेखनश्च।
मेदोमरुत्तृड्हरणोऽतिरूक्षः
प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च॥२७॥

यव (जौ) स्थैर्य, जठराग्नि, मेधा, बल व वर्ण को बढ़ाने वाला तथा पिच्छिल (चिपचिपाहट) के गुण से युक्त होता है। यह स्थूल को कृश करता है। चर्बी, वात व तृषा को दूर करता है। अति रूक्ष होता है तथा रक्तपित्त का प्रसादन करता है, अर्थात् रक्तपित्त रोग को शान्त कर देता है।

एभिर्गुणैर्हीनतरैश्च किञ्चिद्
विद्याद्यवेभ्योऽतियवानशेषान्।

यव (जौ) के सभी भेदों को लगभग इन्हीं गुणों वाला अथवा इनसे कुछ कम गुण वाला जानना चाहिए।

गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च
बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च।
स्निग्धोऽतिशीतोऽनिलपित्तहारी
सन्धानकृत् श्लेष्मकरः सरश्च॥२८॥

गोधूम (गेंहू) मधुर, गुरु, बल्य, स्थिर होता है तथा शुक्र व रुचि को बढ़ाता है। यह स्निग्ध, अतिशीतल व वातपित्तहर होता है। यह सन्धानकर (टूटी हड्डी को जोड़ने वाला), कफकर व सर होता है।

कटुर्विपाके कटुकः कफघ्नो
विदाहिभावादहितः कुसुम्भः॥२९॥

कुसुम्भ विपाक व रस में कटु तथा कफघ्न होता है तथा विदाही गुण के कारण स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है।

ते सक्तवो लघुतरानयनामयघ्नाः
क्षुत्तृट् ज्वरानपदुदंत्यतिसारमेहान्॥२८॥

सद्योबलं ददति शर्करया च सार्धमतर्विदाहा
स्निग्धोऽतिशीतोऽनिलपित्तहारी
शमनाः परमाहिमाश्च।
कटुर्विपाके कटुकः कफघ्नो विदाहिभावादहितः कुसुम्भः॥२९॥

उष्णातसी स्वादुरसानिलघ्नी
पित्तोल्बणा स्यात् कटुका विपाके।
(उष्णस्तथा स्वादुरसोऽनिलघ्नः
पित्तोल्बणः स्यात्कटुको विपाके॥३०॥ ज.1 **)**

अतसी (अलसी) उष्ण, मधुररस युक्त और वातनाशक होती है।

यह पित्त बढ़ाने वाली तथा विपाक में कटु होती है।

पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः
सिद्धार्थकः शोणितपित्तकर्ता।
तीक्ष्णोष्णवीर्यः कफमारुतघ्नः
तथागुणश्चासितसर्षपोऽपि॥३१॥

सिद्धार्थक अर्थात् **श्वेत सरसों** पाक व रस में कटु होती है तथा रक्तपित्तजनक होती है। यह तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा कफवातनाशक होती है। काली सरसों भी इसी के समान गुण वाली होती है।

आढक्यः कफपित्तकोपशमना वीर्येण शीतास्तथा
हृत्पृष्ठोदरकण्ठजामयगदान् मन्दानलं कुर्वते।
कासश्वासवमीतृषाज्वरहराः पथ्याश्च कण्डूरुजा-
पामाकुष्ठभगन्दरेषु मधुरा रूक्षाः कषाया भृशम्॥३२॥

वातानलं–आ., मन्दानलं–ना.। च हिता–ना., मधुरा–आ.।

आढकी (अरहर) कफ व पित्त के प्रकोप को शमन करने वाली तथा शीतवीर्य होती है। यह हृदय, पीठ, उदर व कण्ठ के रोगों को पैदा करती है तथा जठराग्नि को मन्द करती है। आढकी कास-श्वास, वमी (उल्टी), तृषा व ज्वर को दूर करती है। यह खुजली, पामा (विचर्चिका अर्थात् छोटे दानों वाली खुजली), कुष्ठ व भगन्दर रोगों में हितकर होती है। यह मधुर व कषाय रस से युक्त एवं रूक्ष गुण वाली होती है।

आढकी कफपित्तघ्नी ईषन्मारुतकोपनी।
तस्या एव दलं पथ्यं त्रिदोषकृमिजित्तथा॥३३॥

आढकी (अरहर) कफपित्तनाशक व कुछ वातप्रकोप करने वाली होती है। ....
....

(तस्याश्च द्विदलं भोज्यं स्वादु विष्टम्भनं गुरु।)
(दीपनं कफपित्तघ्नं सर्वमेहस्यनाशनम्॥३४॥)

दीपनः कफपित्तघ्नः कृम्यसृग्ज्वरवातनुत्।

हृद्यः स्वादुः कषायः स्यादाढकीसिद्धयूषकः॥३५॥

(तुरीचें काढण)

आढकी (अरहर से बना यूष) दीपन, कफपित्तघ्न, कृमि, रक्तपित्त, ज्वर व वात को दूर करने वाला, हृदय के लिए हितकर, स्वादु व कषाय रस युक्त होता है।

॥ इति आढकीगुणाः ॥

अथ मुद्गगुणाः

ज्वरहरणबलाढ्यं रक्तपित्तप्रणाशं
वदति मुनिगणस्तं मुद्गयूषं प्रशस्तम्।
अनिलमपि निहन्ति स्नेहसंस्कारयुक्तं
शमयति तनुदाहं सर्वरोगेषु शस्तम्॥३६॥

विदधति निपुणास्तं–अ.आ, वदति मुनिगणस्तं–ना.।

मूंग के यूष को मुनिगण ज्वरहर, बलकर व रक्तपित्तनाशक के रूप में उत्तम बतलाते हैं। घृत आदि स्नेह पदार्थ से संस्कारित किया हुआ यह यूष वात को भी नष्ट करता है। मुद्गयूष शरीर की जलन को दूर करता है तथा सभी रोगों में उत्तम माना जाता है।

व्यपगतमलदोषाः प्राणिनः क्षीणगात्रा
अधिकतरतृषार्ता ये च घर्मप्रतप्ताः।
ज्वलनमुखविदग्धा येऽतिसाराभिभूताः
पुनरिह मनुजास्ते मुद्गयूषेण योज्याः॥३७॥

ये नराः–ना., प्राणिनः–अ.आ.।

जो प्राणी क्षीणकाय हैं, बहुत अधिक तृषा से पीड़ित रहते हैं तथा जो घर्म (गर्मी या धूप) से व्याकुल रहते हैं, जिनके पेट में जलन होती है या मुख में छाले हो गये हैं तथा जो अतिसार (दस्त) से पीड़ित हैं, ऐसे व्यक्तियों को दोष व मल का शोधन करवाकर **मुद्गयूष** देना चाहिए। इससे उनको अत्यधिक लाभ होता है।

॥ मुद्गपानीयम् ॥

अथ कुलत्थयूषगुणाः

वीर्ये चोष्णाः कुलत्थाः कफपवनहराः पित्तरक्तप्रदाश्च
पाकेम्लाः श्वासकासोदरहृदयशिरोबस्ति शूलापहाः स्युः।
मूत्राघातप्रमेहाश्मरिगददमनाः शुक्रविच्छेदनाश्च
श्रेष्ठादुर्नामकुष्ठश्वयथु गुदयकृद् गुल्मतूनीगदेषु॥३८॥

भृशदमना-ना., गददमनाः-अ.आ.।

कुलत्थ उष्णवीर्य, कफवातहर, पित्तरक्तजनक, विपाक में अम्ल, श्वास-कासनाशक, उदर, हृदय, सिर व बस्ति के शूल (दर्द) को दूर करने वाले होते हैं। ये मूत्राघात, प्रमेह, पथरी आदि रोगों को नष्ट करते हैं तथा शुक्र का भी क्षय करते हैं। कुलत्थ बवासीर, कुष्ठ, सूजन, गुदरोग, यकृत्‌रोग, गुल्मरोग तथा तूनीरोग में विशेष रूप से लाभदायक होते हैं।

तूनी- ....

॥ कुलत्थयूषम् ॥

अथ मसूरगुणाः

मासूरा लघवोऽति रूक्षविशदाश्चक्षुष्यमूत्रग्रहाऽ
श्लेष्मापित्तनिबर्हणा रुचिकरा वातोल्बणा शीतलाः।
विष्टम्भं जनयन्ति रक्तशमनाः कृच्छ्राश्मरीछेदकाः
सर्वेष्वस्रगदेषु तेषु विहिता हृद्याश्च माधुर्यकाः॥३९॥

वातामयध्वंसनाः-ना., वातोल्बणा शीतला-अ.,आ.।

मसूर लघु, अतिरूक्ष, विशदगुण युक्त व चक्षुष्य (नेत्रहितकर) होते हैं। ये मूत्रावरोध करने वाले, कफ व पित्त के निवारक, रुचिकर, वातवर्द्धक व शीतल होते हैं। मसूर रक्तपित्त का शमन करते हैं तथा विष्टम्भजनक होते हैं। ये मूत्रकृच्छ्र व अश्मरी को नष्ट करते हैं, सभी रक्तविकारों में लाभदायक होने से पथ्य माने गये हैं। ये हृदय के लिए हितकर माधुर्यगुण वाले होते हैं।

प्रभूतवातं कुरुतेऽतिरूक्षः

कफापहः पित्तहरो नितान्तम्।
रुचिप्रदः शूलकरो नराणां
संग्राहिशीतो मधुरः कलायः॥४०॥

संग्राहिशीतो मधुरः कलायः–अ.,आ., सामानुबन्धी कथितः कलायः–ना.।

कलाय (मटर) रूक्षगुणयुक्त व बहुत अधिक वातजनक होता है। यह विशेष रूप से कफनाशक व पित्तहर होता है। मटर भोजन में रुचिजनक, शूल पैदा करने वाला, संग्राही, शीतल व मधुर गुण युक्त होता है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते शिम्बिधान्यवर्गः ॥

अथ चणकगुणाः कथ्यन्ते

रूक्षा वातकराः प्रमेहशमनाः कृच्छ्राश्मरीच्छेदनाः
विड्भेदं जनयन्ति पित्तशमना आध्मानरोगप्रदाः।
कण्ठध्वंसहरास्तु भक्षसुखदाः शुक्रारुचिच्छेदनाः
बल्या वर्णकरा विशुष्कचणकाः पुंसश्च नैते हिताः॥४१॥

इति शुष्कचणकाः।

चणक (चने) रूक्ष, वातजनक, प्रमेहहर, मूत्रकृच्छ्र व अश्मरी (पथरी) के नाशक होते हैं। ये मलभेदक, पित्तशामक तथा आध्मानकारक (वायु से पेट फूलने का विकार करने वाले) होते हैं। ये गला बैठने पर बहुत लाभकर व खाने में स्वादिष्ठ होते हैं। चने शुक्रनाशक, अरुचिहर, बलकारक व रंग निखारने वाले होते हैं। सूखे चने पुंस्त्व (पुरुषत्व शक्ति) के लिए हितकर नहीं होते हैं। गीले चने अतीव वृष्य, बल्य, कफवर्द्धक व रुचिकारक होते हैं।

आर्द्रचणकाः

आर्द्रा वृष्यतमा बल्याः श्लेष्मला रुचिकारकाः।
वातपित्तहरा शीता मूत्रकृच्छ्रनिवारकाः॥४२॥ आर्द्रचणकाः।

गीले चने अतीव वृष्य, बलकारक, कफवर्द्धक एवं रुचिकारक होते हैं। ये वातपित्तहर, शीतल एवं मूत्रकृच्छ्र रोग के निवारक होते हैं।

शेक्यचणकगुणाः

लघवो भ्रष्टचणका भ्रमक्लमहराः पराः।
छर्दिघ्ना रोचना निद्रासुखपुष्टिबलप्रदाः॥४३॥ फुटाणे।

सिके हुए (भुने) चने लघु, भ्रमक्लमनाशक, छर्दिहर व रुचिकर होते हैं। ये निद्रासुख, पुष्टि व बल देते हैं।

कृष्णचणकगुणाः

असितचणकयूषो दाहनाशं विधत्ते
प्रबलमनिलकोपं सर्वमेहप्रणाशम्।
दहनमरिचयोगात्सर्वरोगापहश्च
विदलदलविपक्वः सर्वदोषांश्च हन्ति॥४४॥

सर्वदोषांश्च हन्ति-अ.आ., सर्वदोषापहं तत्-ना.। यूषो-अ.आ., यूषं-ना.।

कृष्णचणकयूषः।

काले चनों का यूष दाहनाशक होता है। यह प्रबल वातप्रकोप को दूर करता है तथा प्रमेह रोग को नष्ट करता है। चित्रक व कालीमिर्च मिलाकर यदि काले चने का यूष बनाया जाये तो वह सर्वरोगनाशक व सर्वदोषनिवारक होता है।

श्वेतचणकगुणाः

पित्तघ्नाश्चणकाः श्वेताः श्लेष्मला वातकोपनाः।
बलं च मलविष्टम्भं मन्दाग्निं जनयन्ति ते ॥४५॥

श्वेतचणकाः

श्वेत चने पित्तनाशक, कफवर्द्धक व वातप्रकोपक होते हैं। ये बलकर, मलविष्टम्भ (कब्ज) करने वाले होते हैं तथा जठराग्नि को मन्द करते हैं।

॥ इति चणकगुणाः ॥

अथ गोधूमगुणाः कथ्यन्ते-

स्निग्धः स्वादुरसो विपाकमधुरः प्रायेण चामाश्रयो
बल्यः शान्तिकरः सरो रुचिकरः सन्धानकारी गुरुः।
शुक्रश्लेष्मविवर्धनो धृतिकरः पित्तानिलध्वंसकः
गोधूमस्तु मनोहरः स्थिरकरः चेतोविकारापहः॥४६॥

शीतकरः-अ.आ., शान्तिकरः-ना.।
गोधूमस्तुमनोहरः स्थिरकरः चेतोविकारापहः-अ.आ., गोधूमः सुमनोहरो धृतिकरः सेव्यः सदा पार्थिवैः-ना.।
चार्वाश्रयो-ना., चामाश्रयो-अ.आ.।

गेंहू स्निग्ध, मधुर रस वाला व विपाक में मधुर होता है। गेंहू स्निग्ध व गुरु होने से प्रायः आमजनक (आंव बनाने वाला) होता है। यह बल्य, दाहशान्तिकर, सर, रुचिकर, सन्धानकारी (हड्डी जोड़ने वाला) व गुरु होता है। यह शुक्र व श्लेष्मा को बढ़ाने वाला, धृतिकर, वातपित्तहर होता है। इस प्रकार गेंहू शरीर में स्थिरता करने वाला तथा चित्त के विकार को हरने वाला होता है।

यवः कषायो मधुरः सुशीतः
मेहे हितः पित्तकफामयघ्नः।
प्रबद्धमूत्रोऽन्ययवः सरश्च
रूक्षः कृमिश्लेष्मविषापहश्च॥४७॥

यव (जौ) कषायरस युक्त, मधुर व अतिशीतल होता है। यह प्रमेहरोग में हितकर व कफपित्त के विकारों का नाशक होता है। जौ मूत्र की मात्रा बढ़ाने वाला व सर होता है। यह रूक्ष, कृमिहर, कफनाशक व विषनिवारक माना जाता है।

(यवः कषायो मधुरः सुशीतो
मेहे हितः पित्तकफामये च।
प्रसृष्टवर्चा कथितोनुनान्द्रै
बल्यश्च वृष्यस्त्वनुलोमनश्च॥४८॥) -ना.

०मयघ्नः-अ.आ., ०मये च-ना.,

वर्णाश्च वृष्यस्त्वनुलोमवातः। ।। यवः। अतियवः।

शीतः कषायस्तु सरश्च रूक्षो
मेहकृमिश्लेष्मविषापहश्च।
माधुर्ययुक्तो बलवांस्तथैव
पित्तापहो वेणुयवः प्रदिष्टः।।४९।।

सरसश्च रूक्षो–ना., सरश्च रूक्षो–अ.आ.।
मेदकृमि–ना., मेहकृमि–अ.आ.।

वेणुयवः।

वेणुयव (यव की एक प्रजाति) शीतल, कषायरसयुक्त, सर व रूक्षगुण वाला होता है। यह प्रमेह, कृमि, कफ व विष का निवारक होता है। माधुर्यरस युक्त वेणुयव बलप्रद व पित्तहर होता है।

तिलः

दन्त्यो वर्णबलाग्निबुद्धिजननस्त्वच्योऽनिलघ्नो गुरुः
स्निग्धः पित्तकरोऽल्पमूत्रकरणः केश्योऽति पथ्यो व्रणे।
ग्राह्युष्णो धृतिकृत्कषायमधुरस्तिक्तो विपाके कटुः
कृष्णः पथ्यतमः सितोऽल्पर‍हितो हीनास्तथान्ये तिलाः।।५०।।

तिल दन्त्य (दाँतों के लिए हितकर), वर्ण, बल, जठराग्नि व बुद्धि को बढ़ाने वाला, त्वचा के लिए हितकर, वातनाशक व गुरु होता है। यह स्निग्ध, पित्तकर, अल्पमूत्रकरण (मूत्र की मात्रा कम करने वाला) केश्य (केशों के लिए हितकर), व्रण में अतीव पथ्य (हितकारी), ग्राही, उष्ण, धृतिकर, कषाय, मधुर व तिक्तरस से युक्त तथा विपाक में कटु होता है। काला तिल अधिक हितकर होता है। श्वेततिल उसकी अपेक्षा कुछ कम गुणों वाला होता है। अन्य तिल इन दोनों से हीन गुणों वाले होते हैं।

।। इति तिलः।।

श्यामाकाः कोद्रवाद्याश्च ये चान्येऽनुक्तशिम्बकाः।
अपथ्यास्ते न शस्यन्ते सुखिनां नीरुजां तथा।।५१।।

श्यामाक (सामक), कोद्रव (कोदो) आदि जो अब तक अनुक्त

(अब तक न कहे गए) शिम्बी धान्य हैं, वे बहुत हितकर न होने से तथा सुखी एवं स्वस्थ लोगों के लिए उपयोगी न होने से यहाँ वर्णित नहीं किए गये हैं।

यद्यदागच्छति क्षिप्रं तत्तल्लघुतरं स्मृतम्।
यवगोधूममाषाश्च तिलाश्चापि नवा हिताः।
पुराणा विरसा रूक्षा न तथार्थकरा मताः॥५२॥

जो-जो धान्य, शिम्बीधान्य या तृणधान्य शीघ्र तैयार हो जाते हैं, वे लघु होते हैं। यव, गोधूम, माष व तिल आदि नये ही हितकर होते हैं, पुराने होने पर ये विरस व रूक्ष हो जाने से वैसे गुणकारक नहीं होते हैं।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते धान्यवर्गः ॥

अथेदानीं पक्वान्नगुणाः कथ्यन्ते-

फेनिका

लघुरुचिकरकाया फेनिकातिप्रशस्ता
बलवति लघुपाका छर्दिनाशं करोति।
विदलति बहुघर्मं चाम्लपित्तं विदाहं
जठरभरणयोग्या गोधूमैः सम्प्रयुक्ता॥१॥

0रुचिकरकामी-आ., 0रुचिकरकाया-ने.। लघुजीर्णे-आ., लघुपाका-ने.।

फेनिका (फेणी) लघु और रुचिर कलेवर वाली, बहुत प्रशस्त भोज्य के रूप में मानी जाती है। यह बलवान व्यक्ति के लिए सुपच होती है। फेणी छर्दि (उल्टी) को समाप्त कर देती है तथा गर्मी, शरीर की अति उष्णता को भी कम करती है। अम्लपित्त व दाह को शान्त करती है। इस प्रकार गेंहू से बनी फेनिका तृप्तिकारक है। उदर भरने योग्य उत्तम मिष्टान्न है।

गुरवो बृंहणा स्निग्धा बल्याः शुक्रकराः पराः।
स्त्रीषु हर्षं प्रयच्छन्ति माषपिष्टकसम्भवाः॥२॥ फेनिया

माष (उड़द) के आटे से बनाई गई फेणी गुरु, बृंहण, स्निग्ध, बल्य व परम शुक्रवर्द्धक होती है। अतिशुक्रवर्द्धक होने से यह कामशक्ति को बढ़ाती है।

गोधूमशालिलाडुः

तोयाज्येन विमर्दितां सुसमितां कृत्वा सुतन्तूस्तथा
खण्डाज्येन पचेद्धुताशनमृदौ कृत्वा सुबद्धं ततः।
कर्पूरैर्मरिचैः कृतोऽयमथवा वासश्चतुर्जातकैः
पुष्पालम्बमिति ब्रुवन्ति मुनयो नाम्ना महामोदकम्॥३॥

पानी व घी में मसलकर तैयार की गई मैदा के पतले तन्तु बना लें। उन्हें खाण्ड व घी के साथ मन्द अग्नि पर पकालें। तदनन्तर कपूर, कालीमिर्च व चतुर्जातक (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) मिलालें तथा लड्डू के रूप में बनालें। इस मिष्टान्न को मुनि लोग पुष्पालम्ब महामोदक नाम से बतलाते हैं।

वृष्यास्तु कन्दर्पकरा बलाग्नि-
संवर्धकाः प्रीतिरुचिप्रदायकाः।
वातं सपित्तं प्रभवन्ति भुक्ताः
सन्मोदका मोदकरा नराणाम्॥४॥

ये मोदक वृष्य, कामशक्तिजनक, बलाग्निवर्द्धक, प्रीति व रुचि बढ़ाने वाले होते हैं तथा वात व पित्त को शान्त करते हैं। ये मोदक वस्तुतः मनुष्यों के लिए मोदकर (आनन्ददायक) होते हैं।

मोदका गुरुतरातिवृष्यका
श्लेष्मलाश्चिरविपाचकास्तथा।
मन्दमग्निजनकातिकोष्ठभू-
न्माषमोदकबलप्रदः सदा॥५॥

मोदका गुरवो वृष्याः श्लेष्मलाश्चिरपाकिनः।
मन्दाग्निं च प्रयच्छन्ति गोधूमाः शालिजास्तथा॥६॥

गोधूमशालिलाडुः।

गोधूमशालिजा–आ., गौधूमाः शालिजा–ने.।

मोदक (लड्डू) गुरु, वृष्य, कफकर व चिरपाकी (देर से पचने वाले) होते हैं। गेंहू व शालि के पिष्टक से बनाए लड्डू गुरु होने से मन्दाग्नि करते हैं।

अमृतफलम्

शमयति बहुपित्तं श्लेष्मकोपं करोति
जनयति जठराग्निं वातरोगान्निहन्ति।।
सुरतजनितखेदं तत्क्षणादेव हन्याद्
अमृतफलमुदारं चारु शंसन्ति वैद्याः।।७।। अमृतफलम्।

श्लेषपित्तं–आ., श्लेषकोपं–ने.

अमृतफल नामक मिष्टान्न पित्त की अधिकता को शान्त करता है, परन्तु कफ को कुपित करता है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है तथा वातरोगों को नष्ट करता है। अमृतफल सुरतखेद (रतिक्रीडाजन्य क्लान्ति) को शीघ्र ही दूर कर देता है। इस उत्तम मिष्टान्न की वैद्य लोग बहुत प्रशंसा करते हैं।

अमृतरसाख्यं भक्ष्यं तिलललितं खण्डघृतपक्वम्।
शमयत्यर्शः कृच्छ्रान् हरति सवातं तथा पित्तम्।।८।।

तिलसांकुली (तिलशष्कुली)

अमृतरस नामक मिष्टान्न बनाने के लिए गेंहू या शालि के आटे में तिल मिलाकर उसे खाण्ड के साथ घी में पकाया जाता है। इस प्रकार तैयार किया गया यह मिष्टान्न अर्श व मूत्रकृच्छ्र को शान्त करता है तथा वातपित्त का निवारण करता है।

रुच्या बल्या मलबलकरा हृद्यगन्धा स्थिरा च
तेजोवर्णं स्थिरवपुकरं शुक्रवृद्धिं करोति।
मेदोवृद्धिं जनयतितरां पित्तरोगेषु शस्ता
सर्पिःपक्वा गुडमधुयुता एलया सम्प्रयुक्ता।।९।।

(कर्पूरवटी)

कर्पूरवटी रुचिकर, बल्य, मल व बल बढ़ाने वाली, मनभावन सुगन्ध वाली, स्थैर्यगुणयुक्त तेज, वर्ण, शरीर की स्थिरता (दृढ़ता) व शुक्रवृद्धि करती है। यह मेद अर्थात् चर्बी की वृद्धि करती है। पित्तरोगों में उत्तम मानी जाती है। यह घी में पकाने के उपरान्त गुड, मधु व इलायची मिलाने से तैयार होती है।

कर्पूराद्या विदलनलिका राजयक्ष्मापहन्त्री
विश्वस्यैता हितकरजनाह्लादनी भक्षणीया॥१०॥ कर्पूर वडिया

कपूर आदि से बनाई गई विदलनलिका राजयक्ष्मा रोग को दूर करती है। ये सभी स्वस्थ जनों के लिए हितकर, आह्लाददायक व भक्षणयोग्य होती है।

घारिकेण्डारिकापूपवटिकावटकादयः॥
वृष्यका रोचका बल्याः गुरवः स्युः स्वयोनिवत्॥११॥

घारिका, इण्डारिका, अपूप, वटिका एवं वटक आदि भक्ष्य वृष्य, रोचक, बल्य व गुरु होते हैं। इनके विशेष गुण अपनी योनि (मूल उपादान, जिससे ये बनते हैं) के समान होते हैं।

वृष्या रोचकदीपिनी बलकरा गुर्वामभिष्यन्दिनी
प्राणांस्तर्पणकारिणी रसवती श्लेष्माणमाबिभ्रती।
घोरानाहविबन्धगुल्मशमनी पित्तास्रविच्छेदिनी
स्नेहेनापि सुपूरिता च सततं भक्ष्येयमिण्डारिका॥१२॥

इडरी

इण्डारिका नामक भक्ष्य रोचक, दीपन, बलकर, गुरु, आम का उत्पादक व अभिष्यन्दी होता है। यह रसयुक्त, प्राणों का आलम्बन व तर्पण करने वाला तथा कफ बढ़ाने वाला होता है। यह भक्ष्यविशेष घोर (भयंकर) आनाह अर्थात् गैस से पेट में हुए तनाव को दूर करता है व विबन्ध (उदर से वात व मल की अप्रवृत्ति) को नष्ट करता है। यह पित्तरक्त को दूर करता है। इस प्रकार स्नेह (चिकनाई) से परिपूर्ण इण्डारिका नामक यह पक्वान्न सेवनयोग्य होता है।

घृतपूरं बलकरं वृष्यं मधुरशीतलम्।
हन्ति वातं रक्तपित्तं श्लेष्मलं च विशेषतः॥१३॥ घृतपूरः

घृतपूर (घेवर) बलकर, वृष्य, मधुर व शीतल होता है। यह वात एवं रक्तपित्त को शान्त करता है, परन्तु कफ को विशेष रूप से बढ़ाता है।

क्षीरखर्जूरिका स्निग्धा शुक्रमांसबलप्रदा।
बल्या रतिकरा हृद्या च्छर्द्यरोचकनाशनी॥१४॥ खाटिया

दूध में पकाये खजूर स्निग्ध, शुक्र, मांस व बल बढ़ाने वाले होते हैं। ये बल्य, रतिशक्तिवर्द्धक व हृदय के हितकर होते हैं तथा छर्दि व अरोचक को दूर करते हैं।

सुस्निग्धा वटिका च दुग्धमृदिता कान्ता च सौख्यप्रदा
बल्या मारुतपित्तरोगशमनी मन्दाग्नये दुर्जरा।
रक्तं पित्तमपाकरोति सततं सा भक्षिता पुष्टिदा
प्रोक्तेयं वटिका घृतेन लुलिता कामाग्निसन्दीपनी॥१५॥
क्षीर वटिका

दूध में मसलकर बनाई हुई क्षीरवटिका सुस्निग्ध, कमनीय, आनन्ददायक, बल्य व वातपित्त-रोगों का शमन करने वाली होती है। यह मन्दाग्नि व्यक्ति के लिए दुर्जर (पचने में भारी) होती है। क्षीरवटिका रक्तपित्त को दूर करती है तथा शरीर को पुष्ट करती है। घृत से आप्लुत करके बनाई गई यह क्षीरवटिका कामशक्ति को बढ़ाती है।

सुस्निग्धा क्षीरवटका कान्तिसौख्यबलप्रदाः।
वातघ्नास्तैलपक्वास्ते वटका माषसम्भवाः॥१६॥ उडीदवडाः

क्षीरवटक सुस्निग्ध, कान्ति, सुख व बल बढ़ाने वाले होते हैं। उड़द के ये वटक घृत की अपेक्षा तेल में पकाने पर यह विशेष रूप से वातनाशक बन जाते हैं।

मुद्गजातास्तु ये केचिल्लघवो रुचिकारकाः।

दुर्जरा लघवो रूक्षाश्चणकादिकृता मताः॥१७॥ मुद्गवडाः

मूंग के वटक लघु व रुचिकारक होते हैं। चने के आटे से बनाये वटक दुर्जर, लघु व रूक्ष गुण वाले होते हैं।

काञ्जिके तु विनिक्षिप्ता वटका माषसम्भवाः।
वातघ्ना रोचका हृद्याः कफपित्तप्रकोपकाः॥१८॥ काञ्जीकवडा

मांष (उड़द) के बडे यदि काञ्जी में डालकर रखे जाएं तो विशेष रूप से वातघ्न, रुचिकर व हृद्य हो जाते हैं। अधिक मात्रा में खाने पर ये कफ और पित्त को प्रकुपित कर देते हैं।

राजीचूर्णैर्विमिश्राः कफपवनहरा रोचनी दीपनीस्या-
न्मन्दाग्निध्वंसकर्त्री मलविषशमनी जारयत्यन्नजातम्।
चिञ्चातोयैर्विमिश्रा गुडलवणयुता पित्तरक्तार्तिहन्त्री
तृष्णामूर्छाभिघातज्वरपवनहरः क्षुद्ररोगस्य हन्ता॥१९॥

चिञ्चवडाः

तक्रं कोमलशृंगबेरकलितं कुस्तुम्बरीसंयुतं
युक्त्यावर्तितमर्धशेषमपरे भाण्डे सुधूपावृतम्।
कृत्वा तक्रमनोहराश्च वटकास्तेषां रुचिर्मार्दवं
स्वादुः सौरभमुद्वहन्त्यहरहस्तं वेत्ति विश्वेश्वरः॥२०॥

आंबवडे।

कूष्माण्डार्द्रकमरिचैजीरकसिन्धूत्थमेथिकासहितैः।
पिष्टैर्माषदलस्थैर्विहिता वटकाश्च विहिताश्च॥२१॥

कोहाळवडे

श्लक्ष्णं गोधूमचूर्णं तुषरहितमुखं स्वादुतोयैर्नसिक्तं
सम्मर्द्यं सुन्दरीणां घनपरिलुलितं गोलकं सूक्ष्मपिष्टैः।
अन्तःपात्रे सुतप्ते करयुगरचिता मण्डकाः श्वेतदीर्घा
निक्षिप्ताः पात्रमध्ये चिमिचिमितयुताः शब्दयन्तः सुसिद्धाः॥२२॥

तद्भक्षा भक्तयुक्तोपरि घृतसहिता मुद्गयूषैर्विमिश्रा

आढक्यैर्वा मसूरैर्घृतपिशितरसैर्जाङ्गलानूपमांसैः।
काले वासन्तपूर्वे प्रहरयुगमुखे भोजनं नित्यपथ्यं
रात्रौ क्षीराज्ययुक्ता ललितनरपतेर्भोजनं ग्रीष्मकाले॥२३॥

ते भोज्या-

गोधूममण्डका रुच्या लघवश्चोष्णदीपनाः।
मण्डका मण्डिका चैव पथ्या अङ्गारपाचिता॥२४॥

मांडे पातिया

गोधूममण्डक (गेंहू के माण्डे) रुचिकर, लघु व दीपन होते हैं। मण्डक या मण्डिकाएं अंगारों पर पकाने से अधिक पथ्य व सुपाच्य होते हैं।

अत्युष्णा मण्डकाः पथ्या अतिशीता गुरुः स्मृता।
कुकूल-कर्पर-भ्राष्ट्र-कद्वङ्गारसुपाचिताः॥२५॥

कुकूल, कर्पर, भ्राष्ट्र, तन्दूर व अंगारों पर पकाए गए गर्मागर्म माण्डे पथ्य होते हैं। अति शीतल होने पर ये गुरु हो जाते हैं।

रक्तघ्ना पित्तकोपी च स्वादुर्मारुतनाशनी।
बृंहणी दीपनी वृष्या गोधूमाङ्गारपाचिता॥२६॥ अंगारिकाः

अंगार...

हिंग्वाजाजिमरीचैर्लवणपटुतरैरार्द्रकैः पूर्णगर्भः
स्निग्धः स्वादुः सुगन्धः परिमलबहुलः कोमलः कुंकुमाभः।
भग्नो दन्तातराले मुरुमुरु कुरुतेऽव्यक्तविस्पष्टशब्दो
नाधान्यानां कपोले प्रविशति वटकः कान्तया प्रीतिदत्तः॥२७॥

कोरावडा

हींग, जीरा मिर्च, लवण, अदरक से पूर्णगर्भ (अन्दर से भरा हुआ), स्निग्ध, स्वादु, सुगन्धित, परिमल बहुल, कोमल, कुंकुम जैसी चमक वाला, वटक (बड़ा) दातों के अन्दर चबाया जाने पर मुरुमुरु ऐसा

अव्यक्त शब्द करता है। कान्ता द्वारा प्रेमपूर्वक दिया हुआ ऐसा वटक अध न्य पुरुषों के कपोल में प्रविष्ट नहीं होता।

शालिपिष्टदधिखण्डसंयुता
दध्न एव वटका घृताप्लुताः।
घोरवातशमना रुचिप्रदा
पित्तरोगमुपहन्ति दारुणम्॥२८॥ दधिवडे

चावल के आटे, दही व खांड से युक्त तथा घृत से आप्लुत (सने हुए) दहीबड़े घोरवात व दारुण पित्त रोग को शान्त कर देते हैं तथा रुचिप्रद होते हैं।

दुर्जरं चणकादीनां वह्निमान्द्यकरं परम्।
लघुरुच्याग्निजननं चाणकं पूरणं स्मृतम्॥२९॥ चणकपूरणम्

चने आदि का पूरण (बड़े में भरा जाने वाला चूर्ण) मन्दाग्निकारक, लघु, रुच्य...

गोधूमचूर्णघनवेष्टितमाषमुद्ग-
पिष्टं सुपक्वमिति वेढनिकां वदन्ति।
तां भक्षयेदतिबलं लभते मनुष्य
तैलेन वा सह घृतेन सुगन्धिना वा॥३०॥ वेढणी

गेंहू के आटे से सघनतापूर्वक वेष्टित (लिपटे हुए) उड़द व मूंग के आटे को घी या सुगन्धित तेल में पकाने से वेढनिका बनती है। उसे खाने से बल की वृद्धि होती है।

तावद्वर्गोऽत्र भक्षाणां स्वदते श्लाघ्यतेऽपि वा।
ऊष्णोष्णाः सर्पिषि स्नाता यावन्नाङ्गारपाचिताः॥३१॥

भक्ष्य पदार्थों का समूह तब तक ही गरजता है जब तक अंगारों पर पकाई तथा घी में नहाई गर्म गर्म रोटी नहीं मिलती।

गुडगोधूमोर्मिश्रं तैलपक्वान्नभक्षणात्।
पित्तश्लेष्मप्रकुर्वन्ति मारुतं चापकर्षति॥३२॥ तैलवटिका:

गुड व गोधूम को मिलाकर तेल में पकाकर बनाया गया अन्न खाने पर पित्तकफ की वृद्धि व वात का अपकर्षण करता है।

लघवः पर्यटा रुच्याः कफघ्नाः शालिसम्भवाः।
गुरवो रोचनाश्चैव शालिमुद्गादिसम्भवाः॥३३॥

शालिमुपापडाः

चावल के आटे से बने पापड़ लघु, रुचिकर, कफनाशक होते हैं तथा चावल व मूंग आदि से बनाए गए पापड़ गुरु व रोचन होते हैं।

विष्टम्भी पायसो बल्यो मेदःकफकरो गुरुः।
कफपित्तकरी बल्या कृशरानिलनाशनी॥३४॥

पायस (खीर) विष्टम्भी, बल्य, चर्बी व कफ बढ़ाने वाली, गुरु होती है। खिचड़ी कफपित्तकारक, बल्य व वातनाशक होती है।

तैलेऽपि पक्वा वटिका च शालिजा
सुदुर्जरा रोचनभक्षणा च।
कफप्रकोपं जनयन्ति सद्यो
विशेषतः कूरवटी च जीर्णाः॥३५॥ कूरवडाः

चावल के आटे से बनाई तथा तेल में पकाई गई कूरवटी अतीव दुर्जर होती है तथा भोज्य पदार्थों में रुचि पैदा करती है। यह शीघ्र ही कफप्रकोप पैदा करती है।

सक्तवो बृंहणा वृष्यास्तृष्णापित्तकफापहाः।
पीताः सद्योबलकरा भेदनः पवनापहाः॥३६॥ सातवाः

सत्तू बृंहण व वृष्य होते हैं। ये तृष्णा, पित्त व कफ को दूर करते हैं। ये शीघ्र बलदायक, मलभेदक व वातनिवारक होते हैं।

सन्धानकृत्पिष्टमामं ताण्डुलं कृमिमेहनुत्।
सन्धानकृत्पित्तहरः पुराणस्तण्डुलः स्मृतः।
सुदुर्जरः स्वादुरसो बृंहणस्तण्डुलोद्भवः॥३७॥ तन्दुलपिष्टः।

तण्डुल (चावल) का कच्चा आटा सन्धानकारी व कृमि तथा प्रमेह

का नाशक होता है। पुराना चावल सन्धानकारी व पित्तहर होता है। तण्डुल का आटा अतिभारी, स्वादु व बृंहण होता है।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते पक्वान्नवर्गः ।।

अथेदानीं फलगुणाः कथ्यन्ते-

त्रिदोषशमनं पथ्यं वृष्यं मधुरशीतलम्।
छर्द्यरोचकतृष्णाघ्नं शोषपित्तज्वरापहम्।।१।।

दाहपित्तप्रशमनं सर्वरोगविनाशनम्।
बलवर्णकरं हृद्यं सुपक्वं दाडिमीफलम्।।२।।

दाडिम (अनार) त्रिदोषशामक, पथ्य, वृष्य, मधुर व शीतल होता है। यह छर्दि, अरोचक, तृष्णा, शोष, पित्त व ज्वर को दूर करता है।

अच्छी प्रकार से पका अनार दाहपित्तशामक, सर्वरोगहर, बलवर्णकर व हृद्य (हृदय के लिए प्रिय व हितकर) होता है।

स्वाद्वम्लं गुणवत्कषायमधुरं विद्वद्भिरुक्तं रसे
वीर्ये संशमनं समीरणहरं पित्तापहं दीपनम्।
किञ्चित्संगृहणं कफस्य हरणं प्रायो विपाके पुनः
प्रख्याता रसवीर्यपाकविभवैरेवंगुणा दाडिमे।।३।।

दाडिमगुणाः

अनार स्वाद्वम्ल (खटमिट्ठा) तथा कषाय-मधुर रस वाला होता है। इसे विद्वानों ने गुणों से भरपूर बताया है। यह विपाक में मधुर तथा शीतवीर्य होता है। अनार वातहर, पित्तनाशक, जठराग्निदीपन, कफहर व कुछ संग्राही होता है। इस प्रकार रस, वीर्य व विपाक की दृष्टि से ये दाडिम के प्रसिद्ध गुण हैं।

चक्षुष्या रक्तपित्तं शमयति मधुरा शीतवीर्या विपाके
स्वादु स्निग्धा कषाया गुरुरति च तृषाशोषदोषापहन्त्री।
द्राक्षाक्षीणक्षताशांस्यपहरति वमीं श्वासकासाज्वरार्तिं
तिक्तास्यत्वं मदं च प्रवरतरफलेषूत्तमा सम्प्रदिष्टा।।४।।

अपक्वा द्राक्षा

द्राक्षा अर्थात् **अंगूर** चक्षुष्य (नेत्र हितकारी) रक्तपित्तशामक, रस व विपाक में मधुर, शीतवीर्य, स्वादु, स्निग्ध, कषाय व गुरु होता है। यह तृषा व शोष को दूर करता है एवं क्षतक्षीण, अर्श, वमी (उल्टी), श्वास, कास, ज्वर, तिक्तासिता (मुख का कड़वापन) का निवारण करती है। यह फलों में उत्तम माना जाता है।

द्राक्षा सैव तु धातुवृद्धिजननी सन्तर्पणी शोषहा
तृष्णार्तिव्ययनी समीरशमनी छर्द्यामयध्वंसिनी।
पाकेऽम्ला सुरसा रसेन मधुरा शीता च वीर्येण सा
सम्पक्वा विहिता ज्वरे च कफजे विण्मूत्रसंशोधनी॥५॥

द्राक्षा

वही द्राक्षा रसरक्त आदि धातुओं की वृद्धि करने वाली, सन्तर्पणी, शोषहर, तृष्णारोग को नष्ट करने वाली, वातशामक व छर्दिहर होती है। यह पाक में अम्ल, मधुर रस वाली रसदार, शीतवीर्य होती है। पकी हुई द्राक्षा कफज ज्वर में पथ्य होती है। यह मलमूत्र का शोधन करती है।

त्वक् तिक्ता कटुका कफकृमिहरा स्निग्धानिलध्वंसिनी
मांसं बृंहणवातपित्तशमनं वृष्यं महादुर्जरम्।
आम्लं केसरमग्निवृद्धिजननं सश्वासकासापहं
हिध्माच्छर्दितृषास्यजाड्यहरणं तन्मातुलिंगोद्भवम्॥६॥

निम्बू के फल की त्वचा (छिल्का) तिक्त, कटु व कफ कृमिहर, स्निग्ध व वातनाशक होती है। निम्बू का आन्तरिक भाग बृंहण, वातपित्तशामक, वृष्य व अति दुर्जर होता है। निम्बू का केसर अम्ल, जठराग्निवर्द्धक एवं श्वास-कास नाशक होता है। यह हिचकी, छर्दि, तृषा व मुख की जड़ता को दूर करता है।

तिक्ता स्निग्धा भवति कटुका मातुलिंगस्य वात-
ध्वंसाय त्वक्, गुरु च मधुरं बृंहणं वातपित्ते।
मासं भिन्ने भवति लघुतत्केसरं कासहिध्मा-
श्वासश्लेष्मानिलजठरजिद् गुल्मशूलारुचिघ्नम्॥७॥

अर्थ ऊपर वाले श्लोक के समान ही है, केवल शब्दावली में भिन्नता है।

सिन्धूत्थेन घनागमे च सितया काले शरत्संज्ञके
हेमन्ते च कणार्द्रहिंगुमरिचैः सिद्धार्थतैलान्वितैः।
एतैस्तैः शिशिरे मधावपि युते ग्रीष्मे गुडेनान्वितं
वैद्यैर्भूमिप! मातुलुंगमुदितं सर्वत्र साधारणम्॥८॥ बीजपूरम्

वर्षा ऋतु में सैन्धव लवण के साथ, शरद् ऋतु में शर्करा के साथ, हेमन्त में पिप्पली, अदरक, हींग व मिर्च एवं सरसों के तेल के साथ, शिशिर में पिप्पली, अदरक, हींग व मिर्च के साथ, वसन्त एवं ग्रीष्म में गुड़ के साथ मातुलुंग फल (बिजौरा निम्बू) का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों के संयोग से छहों ऋतुओं में इसका सेवन उपयोगी होता है।

जम्बीरमम्लं रसतो विपाके
वातापहं पित्तकफप्रदं च।
अन्नस्य पाकं त्वचिरेण कुर्यात्
सुरोचनं वह्निविवर्धनं च॥९॥ जम्बीरम्

जम्बीर रस व विपाक में अम्ल होता है। यह वातहर एवं पित्तकफवर्द्धक होता है। यह शीघ्र ही अन्न का पाचन करता है तथा बहुत ही रुचिकर व जठराग्निवर्द्धक होता है।

कटुकमधुरमम्लं सुप्रतीतं रसेषु
रुचिकरमुदराग्नेर्दीपनं वातहारि।
निहतकफसमीरं पित्तमाहन्ति वीर्यं
करुणकफलमेतद् रक्तपित्तं करोति॥१०॥

रक्तपित्तं-अ., वातपित्तं-को.

करुण निम्बू का फल कटुक, मधुर व अम्ल रस वाला होता है। यह रुचिकर, जठराग्निदीपन व वातहर होता है। इसके सेवन करने वाले के बढ़े हुए पित्त, कफ व वात को क्षीणकर शुक्रक्षय करता है। यह फल रक्तपित्तजनक होता है।

निम्बूफलं रोचकमग्निवृद्धिं
करोति पित्तं समवातरक्तम्।
अचाक्षुषं श्लेष्मकरं विशेषाद्
भुक्तस्य पाकं कुरुते च सद्यः॥११॥ निम्बूगुणाः

निम्बू फल रोचक, जठराग्निवर्द्धक, पित्तकारक व समवातरक्तकारक होता है। यह नेत्रों के लिए विशेष रूप से अहितकर व कफवर्द्धक होता है एवं खाए हुए अन्न को शीघ्र ही पचा देता है।

नारंगस्य फलं बलं च कुरुते सुस्वादु हृद्यं लघु
श्रेष्ठं वह्निकरं विदाहशमनं भुक्तान्नपाकप्रदम्।
सर्वारोचकनाशनं श्रमहरं वातापहं पुष्टिदं
भुक्त्वापि प्रतिभक्षितं न कुरुते किञ्चिद्विकारं नृणाम्॥१२॥

नारंगी फल (सन्तरा) बलकारक, सुस्वादु, हृद्य, लघु, उत्तम जठराग्निदीपन, विदाहशामक एवं खाए हुए अन्न को पचाने वाला होता है। यह सभी प्रकार के अरोचक रोग को दूर करने वाला, श्रमहर, वातनाशक व पुष्टिप्रद होता है। खाने के उपरान्त पुनः खाने पर भी यह कोई विकार नहीं करता।

ईषद्रसे मधुरशीतलमम्लतिक्तं
वीर्योद्गमाच्छमनदीपनपाचनं च।
आवेदयन्ति कफवृद्धिकरं विपाके
नारंगकं फलमुदारधियो नरेन्द्र! ॥१३॥

हे राजन्! नारंगी फल रस में थोड़ा मधुर, शीतल, अम्ल व तिक्त होता है। यह वीर्य के कारण शमन, दीपन व पाचन होता है। विपाक में यह कफवर्द्धक होता है। इस प्रकार उदारमति मुनिजन इसके गुणों का वर्णन करते हैं।

रसे विपाके मधुरा च हृद्या
पित्तप्रकोपे विलयन्ति मान्द्ये।
दाहज्वरभ्रान्तिविनाशनाय
प्राज्ञाश्च वैद्या मधुकर्कटी च॥१४॥ मधुकांकडी

सुस्वादुपाके रस हृद्य रक्षु पित्तप्रकोपं विलपन्त मान्द्यम्। दाहज्वरं नाशयतीव नित्यं प्रज्ञाश्च वैद्या मधुकर्कटीति।। -ने.

मधुकर्कटी (पपीता) रस व विपाक में मधुर व हृद्य होता है। ....

....

....

मोचं स्वादुरसं विपाकमधुरं वीर्येण शीतं ज्वरं
पित्तघ्नं पवनापहं गुरुतरं पथ्यं न मन्दानले।
सद्यः शुक्रविवर्धनं क्लमहरं तृष्णापहं शान्तिदं
दीप्ताग्ने सुखदं कफामयकरं सन्तर्पणं प्राणिनाम्॥१५॥ केळ

त्वनिलाहपं-आ., पवनापहं-ने.। मन्देऽनले-आ., मन्दानले-ने.। कृमिहरं-ने, क्लमहरं-आ.
कषायमधुरं-आ., विपाकमधुरं-ने.।

मोचफल (केला) रस व विपाक में मधुर तथा शीतवीर्य होता है। यह ज्वरहर, वातपित्तनाशक व गुरु होता है। गुरु होने के कारण यह मन्दाग्नि वाले के लिए पथ्य नहीं होता है। केला शुक्रवर्द्धक, क्लमहर, तृषानिवारक, शान्तिप्रद होता है। यह दीप्त अग्नि वाले के लिए सुखकर व सन्तर्पण होता है। अधिक सेवन करने से कफ रोगों को बढ़ाता है।

स्निग्धं स्वादुरसं विपाकमधुरं हृद्यं जडं दुर्जरं
पित्तघ्नं कृमिवर्धनं मदकरं वातामयध्वंसनम्।
आमश्लेष्मविकोपनं प्रशमनं वह्नेः श्रमध्वंसनं
कन्दर्पस्य बलं ददाति नितरां तन्नारिकेलीफलम्॥१६॥

नारिकेल (नारियल) स्निग्ध, रस व विपाक में मधुर, हृद्य, शीतल, दुर्जर, पित्तनाशक, कृमिवर्द्धक, मदजनक व वातरोगनाशक होता है। यह आंव व कफ को कुपित करता है। जठराग्नि को मन्द करता है, थकान को दूर करता है तथा कामशक्ति को बढ़ाता है।

सुस्वादुरूक्षलघुदीपनवृष्यशीतं
तद्वातपित्तहरबस्तिविशुद्धिहेतुः।
स्यान्नारिकेलिसलिलं शिशिरं तु पथ्यं

पित्तज्वरस्य विषहारि वदन्ति वैद्याः॥१७॥ नारिकेलोदकम्
सद्यः-ने., वैद्याः-आ.। वृष्यलघु-ने., रूक्षलघु-आ.। रूक्षशीतं-ने., वृष्यशीतं-आ.।

नारियल पानी सुस्वादु, रूक्ष, लघु, दीपन, वृष्य व शीतल होता है। यह वातपित्तहर व बस्तिशोधक माना जाता है। नारियल पानी विशेष रूप से शीतल गुण युक्त होने से पित्तज्वर में पथ्य होता है। यह विष के प्रभाव को भी दूर करता है, ऐसा वैद्य लोग बताते हैं।

भव्यं भव्यतरं स्वादु किञ्चिदम्लं सुरोचनम्।
वातघ्नं मुखवैरस्यनाशनं वह्निदीपनम्॥१८॥ करमयूर

भव्य (कमरक) का फल भव्यतर, स्वादु, कुछ अम्ल व अतिरोचन होता है। यह वातहर, मुखवैरस्यनाशक अर्थात् मुख की स्वादहीनता को दूर करने वाला एवं जठराग्निदीपन होता है।

हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः।
कफं रूक्षकषायत्वात् त्रिदोषशमनं मतम्॥१९॥ (ने. ग्रन्थे)

आंवला अम्ल होने से वात को नष्ट करता है। मधुर व शीतल होने से पित्त को नष्ट करता है तथा रूक्ष व कषाय होने से कफ को नष्ट करता है। इस प्रकार यह दिव्य फल त्रिदोषशामक होता है।

अम्लं पित्तकफापहं रुचिकरं शीतं कषायं तथा
किञ्चित्स्वादुरसं कषायमधुरं दोषत्रयध्वंसनम्।
मूत्रव्याधिहरं प्रमेहशमनं विष्टम्भविच्छेदनं
भुक्ताभुक्तहितं सदामृतरसं पथ्यं च धात्रीफलम्॥२०॥

आंवला अम्ल, पित्तकफहर, रुचिकर, शीतल, कषाय तथा कुछ माधुर्य युक्त किन्तु मुख्यतः कषाय-मधुर होता है। यह वात, पित्त, कफ- इन तीनों दोषों का शमन करता है। मूत्ररोग व प्रमेह को दूर करता है। विष्टम्भ का निवारण करता है तथा खाने से पहले, पीछे व खाने के साथ- सदा ही पथ्य व अमृततुल्य होता है।

तिक्तं स्वादुकषायमम्लकटुकं स्निग्धं रसे रोचनं
चक्षुष्यं बलवर्णदं धृतिकरं वृष्यं च बुद्धिप्रदम्।
कण्डूकुष्ठविनाशनं ज्वरहरं तृड्दाहतापापहं
जातं किं बहुना त्रिदोषशमनं धात्रीफलं प्राणिनाम्॥२१॥ आवळे

रूक्षं स्वादु-ने., तिक्तं स्वादु-आ.। पुष्टिप्रदम्-ने, बुद्धिप्रदम्-आ। तत्सद्यो हि समस्तदोषशमनं-आ., जातं किं बहुना त्रिदोषशमनं-ने.।

आंवले में तिक्त, मधुर, कषाय, अम्ल व कटु- ये पांच रस होते हैं। यह स्निग्ध, रोचन (रुचिकर), चक्षुष्य, बलवर्णप्रद, धृतिकर, वृष्य व बुद्धिवर्धक होता है। यह खुजली, कुष्ठ, ज्वर, तृषा, दाह व सन्ताप को दूर करता है। इसके गुणों का अधिक क्या वर्णन किया जाए, यह तो त्रिदोषशामक होता है और प्राणियों के लिए सदैव हितकारी माना जाता है।

★ आंवला आयुर्वेद के अनुसार एक दिव्य औषधि है। इसमें पूर्वनिर्दिष्ट पांच रस होते हैं। इस प्रकार की दिव्य औषधियां कम ही हैं, जिनमें पांच रस उपलब्ध हों। हरीतकी (हरड़) भी ऐसी ही अत्यन्त लाभकारी दिव्य औषधि है। उसमें भी मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय ये पांच रस उपलब्ध रहते हैं। इसी प्रकार लहसुन में भी लवण को छोड़कर शेष पांच रस होते हैं। यह भी आंवला व हरड़ के समान अतीव लाभकारी व चमत्कारी दिव्य औषधि है।

पानीयामलकं स्वादु हृद्यं पित्तकफापहम्।
शीतलं वृष्यमायुष्यं दाहज्वरहरं परम्॥२२॥ पानआवळे

पानी आंवला स्वादु, हृद्य, पित्तकफनाशक, शीतल, वृष्य व आयुष्य होता है। यह दाहज्वर में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

बालं पित्तकफास्रवातजननं बद्धास्थि तादृग्विधं
पक्वं स्वादुतरं त्रिदोषशमनं क्षीणाङ्गपुष्टिप्रदम्॥
धातोर्वृद्धिकरं विपाकमधुरं सन्तर्पणं कान्तिदं
तृष्णाशोषनिवारणं रुचिकरं त्वाम्रं फलेषूत्तमम्॥२३॥

कान्तिकृत्-ने., कान्तिदं-आ.। अम्लं-आ., त्वाम्रं-ने.।

कच्चा आम पित्त, कफ व रक्तपित्त को पैदा करता है। थोड़ा बड़ा होने पर गुठली पड़ने की अवस्था में भी इन्हीं गुणों से युक्त होता है। परन्तु जब यह पक जाता है, तब स्वादु, त्रिदोषशामक व क्षीण अंगों को पुष्ट करने वाला होता है। यह रसरक्त आदि धातुओं की वृद्धि करता है, विपाक में मधुर होता है, शरीर का तर्पण करता है व कान्ति में वृद्धि करता है। आम तृषा, शोषनिवारक व रुचिकर होता है। यह फलों में उत्तम माना जाता है।

सन्तर्पणो यः सकलेन्द्रियाणां
बलप्रदो वृष्यतमश्च हृद्यः।
स्त्रीषु प्रहर्षं विपुलं ददाति
फलाधिराजः सहकार एव॥२४॥

सन्तर्पणीयः-ने., सन्तर्पणो यः-आ.।

पका हुआ आम अपने तृप्तिकर रस द्वारा सकल इन्द्रियों का सन्तर्पणकारक होता है। यह बलप्रद, अतीव वृष्य तथा हृद्य होता है। आम बलपुष्टिकर होने से कामशक्ति को बढ़ाता है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण यह फलों का राजा माना जाता है।

आम्रं काले विपक्वं मधुरमिहरसं त्वीषदम्लं च हृद्यं
रेतोवृद्धिं विधत्ते शमयति पवनं पाचनं दीपनं च।
आनन्दं यद्ददाति प्रतिदिशति बलं वीर्यतः संस्तुतं यद्
विख्यातं सर्वलोके ह्यतिजनितकफं दुर्जरं कीर्तयन्ति॥२५॥

आम्बाफलगुणाः

आम्रं पाकस्य काले-आ., आम्रं काले विपक्वं-............
सुश्रुताद्याः, विख्याता सर्वलोके ह्यतिजनितकफं दुर्जरं कीर्तयन्ति-ना.

समय पर पका आम मधुर, अतिसरस, थोड़ा अम्ल व हृद्य होता है। यह शुक्रवर्द्धक, वातशामक, पाचन व दीपन होता है। यह सेवन करने पर अतीव आनन्दप्रद होता है तथा बल व वीर्य को विशेष रूप से बढ़ाता है। सुश्रुत आदि मुनिगण इसे अति कफवर्द्धक व दुर्जर बताते हैं।

आमं कण्ठहरं कपित्थमधिकं जिह्वाजडत्वप्रदं

तद्दोषत्रयकोपनं विषहरं संग्राहकं रोचनम्।
पक्वं श्वासवमिक्लमश्रमतृषाहिध्मापनोदक्षमं
सर्वं ग्राहि विषापहं च कथितं सेव्यं ततः सर्वदा॥२६॥

कच्चा कपित्थ (कैंथ) कण्ठहर (गला बैठाने वाला), विशेष रूप से जिह्वा को जडीभूत (कुण्ठित) करने वाला, तीनों दोषों को कुपित करने वाला, विषहर, संग्राही व रोचन होता है। पका हुआ कपित्थ श्वास, वमि (उल्टी), क्लम (इन्द्रियों की थकान), श्रम (शरीर की थकान), तृषा, हिध्मा (हिचकी) को दूर करता है। सभी प्रकार का कैंथ ग्राही व विषहर होता है। पका कपित्थ विशेष गुणकारी होने से सेवनयोग्य होता है।

पनसो मधुराम्लश्च वातपित्तप्रणाशनः।
शीतः श्लेष्मकरश्चैव गुरुर्मन्दाग्निकारकः॥२७॥ फणसः

पनस (कटहल) मधुर, अम्ल व वातपित्तनाशक होता है। यह शीतल, कफकर, गुरु व मन्दाग्निकारक होता है।

मधुरा बृंहणी वृष्या पित्तला च गुरुप्रदा।
पित्तघ्नी स्वादु हृद्या च मज्जा चैतद्‌गुणोत्तमा॥२८॥ चारोळी

प्रियाल (चिरोंजी) मधुर, बृंहणी, वृष्या, पित्तल व गुरु होती है। इसकी मज्जा (गिरि) पित्तनाशक, स्वादु व हृद्य होती है तथा फल की अपेक्षा अधिक गुणकारी होती है।

कषायमधुरो रूक्षः कटुकः श्लेष्मकारकः।
संग्राहि दुर्जरो जिह्वा जाड्यकारी जडो गुरुः॥२९॥ टेभुरण

टेम्भरू कषाय-मधुर, रूक्ष व कटु होता है। यह कफकारक, संग्राही, दुर्जर, जिह्वाजाड्यकर, गुरु व शीतल होता है। जिह्वाजाड्यकर का अभिप्राय है कि यह जिह्वा में जड़ता, रससंवेदनशून्यता लाता है।

करमर्दोऽतिमधुरः सुपक्वोऽम्लरसस्तथा।
वातपित्तप्रशमनः कृमिशोषविनाशनः॥३०॥ करवंद

करमर्द (करौंदा) पकी अवस्था में अति मधुर तथा कुछ अम्ल रस

वाला होता है। यह वातपित्तशामक, कृमिनाशक व शोषहर होता है।

अम्लिकायाः फलं पक्वं रक्तपित्तकरं सरम्।
तृष्णाघ्नं स्यात्कषायोष्णं कफजित्वनिलापहम्॥३१॥ चिंच

अम्लिका (इमली का फल) पकी अवस्था में रक्तपित्तकारक व सर होता है। यह कषाय, उष्ण, तृषानिवारक, कफहर व वातनाशक होता है।

भल्लातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम्।
तदस्त्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम्॥३२॥ बिबवा

भल्लातक (भिलावे) का छिल्का व गूदा बृंहण, स्वादु व शीतल होता है। यह अग्नितुल्य गुण वाला, मेध्य होता है तथा कफवात को विशेष रूप से नष्ट करता है।

खर्जूरो रक्तपित्तं शमयति मधुरः स्वादुपाकोऽतिशीतः
तृष्णाशोषापहन्ता विषममदरुजाश्वासहिध्मापनोदी।
स्निग्धो वृष्यो बलासं जनयति नितरां वह्निमान्द्यं विधत्ते
कान्तिं वै पुष्टियुक्तां वपुषि समधिकं मूत्रकृच्छ्रं निहन्ति॥३३॥
खर्जूरः

खजूर रक्तपित्त को शान्त करता है, रस में अति मधुर तथा विपाक में भी मधुर होता है। यह शीतल होता है तथा तृषा व शोष को दूर करता है। खजूर विषम मद, श्वास रोग व हिचकी को दूर करता है। यह स्निग्ध, वृष्य, कफजनक व विशेष रूप से मन्दाग्निकारक होता है। खजूर कान्तिकर व विशेष रूप से पुष्टिकर होता है। यह मूत्रकृच्छ्र रोग को दूर करता है।

पिण्डः खर्जूरमध्ये तु तादृगेव निगद्यते।
विशेषादूर्ध्वगरक्ते दाहे पित्ते च शस्यते॥३४॥ पिण्डखजूर

खजूर की प्रजातियों में **पिण्डखजूर** भी पूर्वोक्त खजूर के समान ही गुण वाला होता है। यह उर्ध्वगामी रक्तपित्त में विशेष रूप से लाभदायी होता है। इसी प्रकार दाह (जलन) व पित्त के विकारों में भी हितकर

होता है।

सिन्दोलं कफवातपित्तशमनं रक्तातिसारापहं
पामाकुष्ठभगंदरामशमनं तीव्राश्मरी छेदनम्।
हृद्रोगेषु हितं सदाबलकरं कामाग्निसन्दीपनं
कासक्षीणविरेचने ज्वरगदे शस्तं च सिन्दीफलम्॥३५॥

सिन्दोल फल वातपित्तकफ का शामक, रक्तातिसारनाशक व खुजली, कुष्ठ, भगन्दर, आंव तथा पथरी को नष्ट करता है। यह हृदय रोगों में हितकर, सदा बलप्रद व कामशक्तिवर्द्धक होता है। कास, दुर्बलता, विरेचन व ज्वर में यह विशेष रूप से हितकारी होता है।

सुवर्णमोचा कफपित्तहारिणी
विष्टम्भिनी दीपनकारिणी च।
सुदुर्जरा दाहविघातिनी च
रक्तं च पित्तं शमयेच्च निश्चितम्॥३६॥

सुवर्णकदलीफलम्

स्वर्णमोचा (सोना कदली) कफपित्तहर, विष्टम्भकारक, अग्निदीपन, अतिदुर्जर व दाहनाशक होती है। यह रक्तपित्त रोग को निश्चित रूप से ही शान्त कर देती है।

ईषत्कषायामधुरा वातपित्तनिबर्हणी।
बल्या वृष्या च हृद्या च विशेषादुत्तती तथा॥३७॥ खारीक

उत्तती फल थोड़ा कषाय मधुर होता है तथा वातपित्त को नष्ट करता है। यह बल्य, वृष्य व विशेष रूप से हृद्य (हृदय के लिए हितकर) होता है।

अश्वत्थवृक्षस्य फलानि पक्वा-
न्यतीव हृद्यानि सुशीतलानि।
निघ्नन्ति पित्तं सहशोणितेन
दाहं तृषां छर्दिमरोचकं च॥३८॥ पिप्पलफलानि

अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के पके फल अतीव हृदयप्रिय व अतिशीतल होते हैं। इसीलिए ये रक्तपित्त रोग को शीघ्र ही शान्त कर देते हैं। ये दाह, तृषा, उल्टी व भोजन में अरुचि को भी दूर कर देते हैं।

औदुम्बरं फलमतीव सुशीतलं च
सद्यो निवारयति शोणितपित्तमुग्रम्।
पथ्यं विषे विषमपित्तशिरोविकारे
नासाप्रवृत्तरुधिरे च विशेषतस्तु॥३९॥ उंबर

उदुम्बर (गूलर) का फल अति शीतल होता है। यह प्रबल रक्तपित्त रोग को भी तुरन्त शान्त कर देता है। गूलर का फल विष, भयंकर पित्तरोग, शिरोरोग तथा नक्सीर (नाक से खून आने) के रोग में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

अपक्वं श्लेष्मजननं मलविष्टम्भकारकम्।

कच्चा................ कफकारक होता है तथा मलबद्धता करता है।

तुम्बीफलं श्लेष्मकरं च पित्तजिद्
रक्तातिसारग्रहणीषु शस्तम्।
मूत्रावरोधं कुरुतेऽति तीव्रं
विशेषतो रक्तसमीरणं च॥४०॥ लांबतुंबीफल

समीरणघ्नं-ने., समीरणं च-आ.।

तुम्बीफल (लौकी) कफजनक, पित्तहर होती है। यह रक्तपित्त, खूनी दस्त, ग्रहणीरोग में बहुत लाभदायक होती है। लौकी मूत्र में रुकावट पैदा करती है तथा ....।

कोशातकी शोणितपित्तहन्त्री
महागदे शोषमदात्यये च।
श्रमक्लमे मेहभगन्दरे च
व्रणेषु पित्तेष्वपि नित्यपथ्यम्॥४१॥

सराजकोशातकिपित्तहन्ता-आ., कोशातकिशोणितपित्तहन्त्री-ने.।

पथ्येष्वपि-ने., पित्तेष्वपि-आ.।

राजकोशातकीफलम्

कोशातकी (तोरी) रक्तपित्त को नष्ट करने वाली, क्षय, शोष व मदात्यय (नशा होने पर) अति लाभकर होती है। यह श्रम, क्लम, प्रमेह, भगन्दर, व्रण व पित्तविकारों में नित्य पथ्य मानी जाती है।

महाकोशातकी पित्तशमनी तृड् विनाशिनी।
मेहे हिता सदा दाहे पित्तच्छर्दिविनाशिनी॥४२॥

महाकोशातकीफलम्

शिराकोशातकी-ने., महाकोशातकी-आ.

महाकोशातकी (धारीदार तोरी) पित्तशामक व तृषानिवारक होती है। यह प्रमेह, व दाह में सदा हितकर होती है तथा पित्तविकार व छर्दि (उल्टी) को दूर करती है।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते फलवर्गः ॥

फलशाकादिवर्गः

फलं पर्यागतं शाकमशुष्कं तरुणं नवम्।
पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं भूस्वेदजं तथा।
शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम्॥१॥

जो फल शाक के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वे फलशाक कहलाते हैं। ये कच्चे या तरुण रूप में प्रायः शाक के लिए प्रयुक्त होते हैं। पत्र, पुष्प, फल, नाल, कन्द व भूस्वेदज- इन भेदों से शाक छह प्रकार का माना जाता है। इनमें उत्तरोत्तर को गुरु जानना चाहिए। अर्थात् पत्रशाक सबसे लघु होता है। पुष्पशाक उससे गुरु तथा फलशाक उससे भी गुरु होता है। इसी प्रकार नाल, कन्द व भूस्वेदज (मशरूम) के शाक क्रमशः उत्तरवर्ती गुरु होते हैं।

सर्वशाकमचक्षुष्यमवाकनुषमपौरुषम्।
अन्यत्र वास्तुमत्स्याक्षीमेघनादपुनर्नवाः॥२॥

कालशाकपुनर्नवा–ना., मेघनादपुनर्नवा–आ.।

प्रायः सभी शाक नेत्रों के लिए अहितकर होते हैं। ....
.... परन्तु
वास्तु (बथुआ), मत्स्याक्षी (..........), मेघनाद व पुनर्नवा के शाक
उक्त प्रकार की हानि नहीं करते हैं।

शीतो रूक्षो लघुरतितरां पित्तरक्तापहन्ता
स्वादुः पाके भवति च रसे सृष्टहृन्मूत्रहृद्यः।
हन्याद् व्याधिं विषमविषजं श्लेष्मवातप्रकोपं
सद्यो मज्जामयविघटनस्तन्दुलीयोऽतिपथ्यः॥३॥

तन्दुलीय (चौलाई) का शाक रूक्ष, अति लघु, पित्तरक्तनाशक,
विपाक व रस में स्वादु एवं अधिक मलमूत्रजनक होता है। यह हृद्य होता
है तथा विषविकारहर व वात, कफ के प्रकोप का निवारक होता है। ..
....

रसे विपाके मधुरोऽतिशीतो
रूक्षो मदारोचकनाशनश्च॥
सदाहपित्तं रुधिरं विषं च
विशेषतो हन्ति च तन्दुलीयम्॥४॥ तांदुळजा
तृषारोचक–को., मदारोचक–आ.।

तन्दुलीय (चौलाई) का शाक रस व विपाक में मधुर, अति शीतल,
रूक्ष, मद व अरुचि का नाशक, दाह (जलन), रक्तपित्त व विषविकार
को विशेष रूप से नष्ट करता है।

बिम्बीफलं स्वादु शीतं स्तम्भनं लेखनं गुरुः।
पित्तास्रदाहशोफघ्नं वाताध्मानविबन्धकृत्॥५॥ बिम्बीफलम्

बिम्बीफल ( ) का शाक स्वादु, शीतल, स्तम्भन, लेखन व गुरु होता
है। यह पित्तरक्त, दाह व शोफ का नाशक होता है तथा वातविकार,
आध्मान व विबन्ध पैदा करता है।

कर्कोटकफलं गुल्मशूलपित्तकफापहम्।
त्रिदोषकुष्ठमेहघ्नमीषन्मधुरतिक्तकम्।
कासश्वासज्वरहरं मारुतघ्नं परं लघु॥६॥ कंकोडा

कर्कोट फल गुल्म, शूल, पित्त व कफ को शान्त करता है। यह त्रिदोषहर, कुष्ठ व मेह का नाशक होता है तथा रस में थोड़ा मधुर व तिक्त होता है। कर्कोट कासश्वासहर, ज्वरनिवारक, वातनाशक एवं लघु होता है।

वास्तूकोऽग्निकरो रसे च मधुरः पित्तापहश्चाक्षुषः
स्निग्धो वातविनाशनः क्लमहरः कुष्ठादिदोषापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः प्रमथनः श्लेष्मामयानां तथा
शाकानामपि चोत्तमो लघुतरः पथ्यः सदा प्राणिनाम्॥७॥

प्रशमनः-अ., प्रमथनः-आ.।

वास्तूक (बथुआ) जठराग्निवर्द्धक, रस में मधुर, पित्तहर, नेत्रहितकारी, स्निग्ध, वातनाशक व क्लमहर होता है। यह कुष्ठादि रोगों को दूर करने वाला, मलमूत्र का शोधन करने वाला, कफरोगों का नाश करने वाला होता है। बथुआ शाकों में उत्तम माना जाता है। यह बहुत हल्का व प्राणियों के लिए सदा पथ्य होता है।

वास्तूकेषु च सर्वेषु शस्यते कण्टवास्तुकम्।
चिल्ली वास्तुकवज्ज्ञेया ततो न्यूना च किञ्चन॥८॥

सभी वास्तूकों (बथुआ के भेदों) में कण्टवास्तूक सबसे श्रेष्ठ होता है। चिल्लीशाक भी वास्तूक के समान ही होता है। यह गुणों में उससे कुछ कम होता है।

सक्षारः कृमिजित्त्रिदोषशमनः सन्दीपनःपाचन-
श्चक्षुष्यो मधुरः सरो रुचिकरो विष्टम्भशूलापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः स्वरकरः स्निग्धो विपाके कटु-
र्वास्तूकः सकलामयप्रशमनश्चिल्ली तदेवोत्तमा॥९॥

चाकवत

विष्टम्भि शूलापहः-अ., विष्टम्भशूलापहः-आ.।

....

.. ..

कफस्य वातस्य शमं करोति
उष्णं च पित्तं कुरुतेऽग्निदीप्तिम्।
हृद्यं कृमिघ्नं च सुरोचनं च
आध्मानविड्बन्धविनाशनं च॥१०॥

सुरोचकं–आ., सुरोचनं–ना.।

शिग्रु (सहिजन) कफ व वात का शमन करता है तथा उष्ण होने से पित्त को बढ़ाता है एवं जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। यह हृद्य, कृमिनाशक, अतीव रोचक होता है तथा आध्मान एवं विड्बन्ध (कब्ज) को नष्ट करता है।

मूत्रावरोधं कुरुते च तीव्रं
कोटीभटं चाग्निकरं नराणाम्। –अ.
(श्लेष्माकरं रोचनपाचनं च
कोटीभटं चाग्निकरं नृणां च॥११॥) –आ.,ना.

कोटिबंडागुणा

राजिका कफसमीरणहन्त्री
रोचनाग्निजननी निगद्यते।
कण्ठहृत्कृमिविनाशनकर्त्री
चोष्णवीर्यमपहन्ति च शूलम्॥१२॥ राई

राजिका (राई) कफवात नष्ट करने वाली, रोचन व जठराग्निवर्द्धक मानी जाती है। यह गला बैठने की समस्या को दूर करती है तथा कृमिनाशक होती है। उष्णवीर्य होने से यह शरीर में होने वाले शूल (दर्द) को नष्ट करती है।

शतपुष्पामवातघ्नी शूलगुल्मादरापह।
दीपनी च विशेषेण किञ्चित्पित्तप्रकोपनी॥१३॥ शेपा

शतपुष्पा (सौंफ) आम व वात को नष्ट करने वाली, शूल, गुल्म व उदररोगों का निवारण करने वाली तथा जठराग्निदीपनी होती है। यह कुछ पित्तप्रकोप-कारक भी होती है।

बल्या वृष्या च कण्ठ्या कफपवनहरा स्यात्त्रिदोषेषु शस्ता
लघ्वी मूत्राभिघातप्रशमनवमने स्यात्तथा कृच्छ्रहन्त्री।
पित्तोद्रेके च रक्ते विषमविषहरी दीपनी शाकश्रेष्ठा
पत्राणां राजवल्लीफलमतुलमलानां प्रवृत्तिं करोति॥१४॥
राजवली
0मतुलमतांत्रंतवृद्धिं करोति-अ., 0मतुलमलानां प्रवृत्तिं करोति-आ.।

राजवल्ली बल्य, वृष्य, कण्ठ्य, कफवातनाशक व तीनों दोषों में उत्तम मानी जाती है। यह लघु, मूत्राभिघातनिवारक, मूत्रकृच्छ्रनाशक एवं वमी निवारक होती है। यह पित्त की अधिकता व रक्तपित्त रोग में लाभदायक होती है। यह विषम विष का निवारण करने वाली ....
....

दृष्टिप्रसादं कुरुते विशेषाद्
रुचिप्रदं दीप्तिकरं च वह्नेः।
विण्मूत्रदोषापहरं मलाढ्यं
कौसुम्भशाकं प्रवरं वदन्ति॥१५॥ कुसुंभ
प्रदन्ति वैद्याः-अ., प्रवरं वदन्ति-आ.।

कुसुम्भ का शाक नेत्र दृष्टि को ठीक करता है तथा रुचिकर एवं जठराग्निवर्द्धक होता है। यह अधिक मलजनक तथा मलमूत्र के दोष को दूर करता है। वैद्य लोग कुसुम्भ के शाक को उत्तम शाक मानते हैं।

अत्युष्णवीर्यं कुरुतेऽग्निदीप्तिं
रक्तस्य पित्तस्य च कण्ठरोगम्।
अचाक्षुषं शुक्रहरं विदाहि
न सार्षपं शाकमिदं हि पथ्यम्॥१६॥ सर्षपः

सरसों का शाक अति उष्णवीर्य होता है। यह जठराग्नि को दीप्त

करता है तथा रक्तपित्त व कण्ठरोग का जनक होता है। यह नेत्रों के लिए अहितकर, शुक्रनाशक व विदाही होता है। अतः वैद्य लोग सरसों के शाक को पथ्य नहीं मानते हैं।

सक्षारं कफवातहारि रुचिकृत् वह्नेस्तु सन्दीपनं
तिक्तोष्णं मधुरं तथा कटुरसमीषच्च पित्तप्रदम्।
हृद्यं रुच्यमतीव पथ्यमपि तद् दृष्टेरपथ्यं पुन-
र्वार्ताकं परिपूर्णजातसरसं बालं न पक्वं हितम्॥१७॥ वृन्ताकम्

बैंगन का शाक सक्षार, कफवातहर, रुचिकर, जठराग्निदीपन होता है। यह रस में तिक्त, उष्ण, मधुर व कटु होता है तथा कुछ पित्तवर्द्धक होता है। बैंगन हृदय के लिए हितकर, रुच्य, अति पथ्य होता है, परन्तु नेत्रज्योति के लिए पथ्य नहीं होता है। परिपक्व रस वाला अर्थात् पूर्ण विकसित बैंगन अच्छा होता है, जबकि बहुत कच्चा या बहुत अधिक पका हुआ बैंगन स्वास्थ्य के लिए उत्तम नहीं होता है।

वार्ताकं कफवातघ्नं किञ्चित्पित्तप्रकोपनम्।
सरणं मूत्रलं प्रोक्तं बलकृद् बालमेव तत्॥१८॥

बैंगन कफवातहर, कुछ पित्तप्रकोपकारक, सर (दस्तावर), मूत्रल (अधिक मूत्र लाने वाला) बताया गया है। कच्चा बैंगन बलकारक होता है।

लवणमरिचचूर्णैरावृतं रामठाढ्यं
दहनवदनपक्वं जम्बुकान्तं नितान्तम्।
हरति पवनसंघं श्लेष्महं तु प्रसिद्धं
जठरभरणयोग्यं चारुभोज्यं भरित्रम्॥१९॥ मुळा

लवण, कालीमिर्च व हींग से युक्त जलती अग्नि में अंगारों के मध्य पकाया गया बैंगन वातविकारों के समूह को नष्ट कर देता है तथा प्रसिद्ध कफनाशक के रूप में प्रसिद्ध है। यह भूख मिटाने के लिए बहुत सुन्दर व स्वादिष्ठ भोज्य पदार्थ है।

रुच्यो दीपनपाचनः कृमिहरो मन्दानलोद्दीपनो
हृद्यः श्लेष्महरो लघुर्बलकरो दुर्नामनिर्नाशना।
अक्षाणामपि पाटवं प्रकुरुते सश्वासकासापह-
श्चक्षुष्योऽपि च सूरणः स्मृतिकरो हृत्पार्श्वशूलापहः॥२०॥ सूरण

सूरणकन्द रुच्य, दीपन, पाचन, कृमिहर, मन्दाग्नि को उद्दीप्त करने वाला, हृदय के लिए हितकर, कफनाशक, लघु व बलकर होता है। यह बवासीर तथा कास-श्वास को नष्ट करता है एवं इन्द्रियों में पटुता (कुशलता) पैदा करता है। यह नेत्रों के लिए हितकारी, स्मृतिवर्द्धक तथा हृदय एवं पार्श्वभाग (बगल के हिस्सों) की पीड़ा को दूर करता है।

भूकन्दस्त्वतिबाकलो बलकरः श्लेष्माणमत्यर्थकृद्
विष्टम्भी गुरुदोषलोऽपि विषमो वातामयं दीपवत्।
मेहं कुष्ठरुजं करोति सततं तद्वातरक्तं महत्
पिण्डालुः कृमिकोष्ठकृच्छ्रमलहृत्पित्तामयध्वंसकः॥२१॥

पिण्डालु

गुरुमेदसो-आ., गुरुदोषलो-अ.।

भूकन्द अति वातवर्द्धक, बलकर, अत्यधिक कफवर्द्धक, विष्टम्भी, गुरु, त्रिदोषजनक, प्रमेह, कुष्ठ व वातरक्त रोगों को पैदा करने वाला होता है। यह कृमिरोग, कोष्ठ, कब्ज व पित्तरोगों को नष्ट करता है।

आर्द्रं पाचनदीपकं रुचिकरं वृष्यं कटूष्णं वरं
स्वर्यं मेध्यवरं कफानिलहरं शोफापहं शूलजित्।
जिह्वाकण्ठविशोधनं सलवणं पथ्यं सदा भोजने
निम्बूतोयविमर्दितं रुचिकरं सन्दीपनं सारणम्॥२२॥ आर्द्रकं

आलेम्

अदरक पाचन, दीपन, रुचिकर, वृष्य, कटु, उष्ण, कण्ठस्वर के लिए हितकर, मेध्य, कफवातहर, शोफ व शूल का निवारक होता है। सैन्धव लवण सहित अदरक का भोजन के आरम्भ में सेवन करने से यह

जिह्वा व कण्ठ का शोधन करता है तथा भूख बढ़ाता है। निम्बूजल में मर्दित किया हुआ अदरक जठराग्निदीपन, रुचिकर व सर होता है।

बालं ह्यनार्तवं जीर्णव्याधितं कृमिभक्षितम्।
कण्ठं विसर्जयेत्सर्वं यो वा सम्यग् न रोहति॥२३॥

कच्चा (अपरिपक्व) अनार्त्तव (बिना ऋतु का), जीर्ण (पुराना या बहुत ज्यादा पका हुआ), कृमिभक्षित (कीड़ों द्वारा खाया हुआ) तथा अच्छी प्रकार से न उगा हुआ अदरक गले को खराब कर देता है।

कुमुदोत्पलपद्मानां कन्दा मारुतकोपनाः।
कषायाः पित्तशमना विपाके मधुरा हिमाः॥२४॥

कुमुद, उत्पल, व पद्म के कन्द वातप्रकोप-कारक होते हैं। ये कषाय, पित्तशामक, विपाक में मधुर व शीतल होते हैं।

<u>हृद्याः कफहराः</u> कन्दा कटूष्णा रसपाकयोः।
मेहकुष्ठकृमिहरा वृष्या बल्या रसायनाः॥२५॥ वाराही

मोहश्रमहरा कन्दा- ना., हृद्याः कफहराः कन्दा-आ.।

कन्द हृद्य, कफहर तथा रस व विपाक में कटु एवं उष्ण होते हैं। ये प्रमेह, कुष्ठ व कृमि रोग को दूर करते हैं तथा वृष्य, बल्य एवं रसायन होते हैं।

सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं रेतोविकारिणाम्।
दृष्टिशुक्रक्षयकरं कालिङ्गं कफवातकृत्॥२६॥ कालिङ्गम्

कालिंग (....) सर्वदोषहर व हृद्य (हृदय के लिए हितकर व प्रिय) होता है। यह रेतोविकार (शुक्रविकार) वालों के लिए पथ्य होता है तथा कफवातवर्द्धक होता है।

वृष्यं वर्णकरं बलोपजननं पित्तापहं वातजित्
मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं कृच्छ्राश्मरीछेदनम्।
विण्मूत्रग्लपनं तृषार्तिशमनं क्षीणाङ्गपुष्टिप्रदं
कूष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानां पुनः॥२७॥ कोहले

कूष्माण्ड (पेठा) वृष्य, वर्णकर (रंग निखारने वाला), बलवर्द्धक, पित्तहर, वातनाशक, मूत्राघातनिवारक, प्रमेहशामक व कृच्छ्राश्मरीनाशक होता है। यह मलमूत्र को विलपित करने वाला, तृषा को शान्त करने वाला तथा क्षीण अंगों को पुष्ट करने वाला होता है। वैद्य लोग लता पर लगने वाले फलों में कूष्माण्ड को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं।

मूत्रावरोधशमनो बहुमूत्रकारी
कृछ्राश्मरीप्रमथनो विनिहन्ति पित्तम्।
पथ्यः सशोणितसमुल्बणपित्तरोगे
तृष्णापहं त्रपुषमेवमुदाहरन्ति॥२८॥ डांगर

प्रशमनो-को., प्रमथनो-आ.।

त्रपुष (खीरा) फल मूत्रावरोध (पेशाब की रुकावट) को दूर करने वाला, अधिक मूत्रजनक, कृच्छ्राश्मरी को नष्ट करने वाला तथा पित्त का शामक होता है। यह प्रबल पित्तरोग में बहुत अधिक पथ्य होता है। इसे वैद्य लोग तृष्णानिवारक बतलाते हैं।

एर्वारुकं पित्तहरं सुशीतं
मूत्रामयघ्नं रुचिकारकं च।
सुस्वादु दाहोपशमं प्रशस्तं
पित्ते च रोगे कफरोगवर्ज्यः॥२९॥

एर्वारुक (खरबूजा) पित्तहर, अतिशीतल, मूत्ररोगनाशक व रुचिकारक होता है। यह सुस्वादु, दाहशामक होता है तथा शीतल होने से पित्तरोग में उत्तम माना जाता है। कफरोग में तो इसे वर्जित (निषिद्ध) किया है।

वालुकानि तु सर्वाणि दुर्जराणि गुरूणि च।
मन्दाग्निं च प्रकुर्वन्ति रक्तपित्तकराणि च॥३०॥ वालुकम्

मन्दमग्निं-अ., मन्दाग्निं च-आ.।

सभी **वालुक (फूट)** गुरु व दुर्जर होती हैं, ये मन्दाग्नि तथा रक्तपित्त रोग को पैदा करती हैं।

सिंधनी वातशमनी वृष्या मधुरशीतलः।
रक्तपित्ते विदाहे च पित्ताग्नीनां प्रशस्यते॥३१॥ सेंधणी

सिंधनी वातशामक, वृष्य, मधुर व शीतल होती है। यह रक्तपित्त व विदाह में हितकर होती है तथा तीव्र जठराग्नि वालों के लिए उत्तम मानी जाती है।

कुमुदोत्पलपद्मानां कन्दा गुणतरा हिमाः।
मधुराश्च कषायाश्च पित्तासृग्दाहनाशनाः॥३२॥ कमलकंद

कुमुद, उत्पल व कमल के कन्द गुणकारी, शीतल, मधुर व कषाय होते हैं। ये पित्तरक्त व दाह को शान्त करते हैं।

शीतलं रक्तपित्तघ्नं दाहज्वरहरं परम्।
मृणालनालं वृष्यं च तृष्णाछर्दिविनाशनम्॥३३॥ कमलनाल

मृणालमूलं–ना., मृणालनालं–आ.।

मृणालनाल (कमलनाल) शीतल, रक्तपित्तनाशक, विशेष रूप से दाहज्वरनिवारक व वृष्य होता है। यह तृष्णा व छर्दि (उल्टी) को दूर करता है।

श्रृंगाटकः शोणितपित्तहारी
लघुः सरो वृष्यतमो विशेषात्।
त्रिदोषतापभ्रमशोषहन्ता
रुचिप्रदो मेहनदार्ढ्यहेतुः॥३४॥ शिंगाडा

(श्रृंगाटक) सिंघाडा रक्तपित्तहर, लघु, सर व अत्यधिक वृष्य होता है। यह त्रिदोषनिवारक, ताप, भ्रम व शोष को दूर करने वाला, रुचिप्रद तथा कामशक्तिवर्द्धक होता है।

हन्त्यम्लपित्तमरुचिं वमिमोहदाहं
तृष्णामदक्लमहरं मधुरं च शीतम्।
कण्ठास्यशोषशमनं गुरु रक्तपित्ते
क्षीणे च पथ्यमनिवारि कसेरुकं स्यात्॥३५॥ कसेरु

तृष्णामय–ना., तृष्णामद–आ.।

कसेरु अम्लपित्त, अरुचि, वमी, मोह, दाह, तृष्णा, मद व क्लम को दूर करता है। यह मधुर व शीतल होता है। कण्ठ व मुंह के सूखने पर तरावट देने के लिए बहुत उपयोगी होता है। यह गुरु गुण वाला होता है तथा रक्तपित्त व दुर्बलता में बहुत हितकर माना जाता है।

चिल्लीवास्तु कटु दूघ्नाः संग्राही गुरुवातलः।
काचमाची त्रिदोषघ्नी चांगेरी कफवातहृत्॥३६॥

चिल्लीवास्तु कटु, ... संग्राही, गुरु एवं वातवर्द्धक होता है। **काकमाची** त्रिदोषनाशक होती है। **चांगेरी** कफवातहर होती है।

वातहृद्दीपनी फञ्जी भारंगी नालिचव्यकौ।
मधुरौ कफपित्तघ्नौ कुसुम्भं सर्वरोगहृत्॥३७॥
कौसुम्भः सर्वदोषकृत्-अ., कुसुम्भं सर्वरोगकृत्-आ., कुसुम्भं सर्वरोगहृत्-ना., कौसुम्भं सर्वरोगहृत्-को.।

....

....

मूलकं दोषकृच्चामं पक्वं वातकफापहम्।
राजिका पित्तला वातकफघ्नं तन्दुलीयकम्॥३८॥

कच्ची मूली दोषकारक होती है, **पकी मूली** वातकफनाशक होती है। **राजिका (राई)** पित्तवर्द्धक होती है। **तन्दुलीय (चौलाई)** वातकफनाशक होती है।

वर्षाभूर्वातपित्तघ्नी सिद्धार्थः कफवातहृत्।
कृमिपित्तकफध्वंसी दीपनः कासमर्दकः॥३९॥

वर्षाभू वातपित्तनाशक होती है। **सिद्धार्थ** (सफेद सरसों) कफवातनाशक होता है। **कासमर्दक** (...........) कृमि, पित्त व कफ को नष्ट करने वाला तथा दीपन होता है।

कर्कोटकं सवार्त्ताकं पटोलं कारवेल्लकम्।
कुष्ठमेहज्वरश्वासकासमेदःकफापहम्॥४०॥

कर्कोटक, वार्ताक, पटोल व करेला– ये सब कुष्ठ, मेह, ज्वर, कास, मोटापा व कफ को दूर करते हैं।

सर्वदोषहरं ज्ञेयं कूष्माडं बस्तिशोधनम्।
राजकोशातकी तुम्बीफलमत्युग्रपित्तहृत्॥४१॥

कूष्माण्ड (पेठा) सर्वदोषहर व बस्तिशोधन (मूत्राशय को शुद्ध करने वाला) होता है। राजकोशातकी व तुम्बीफल– ये दोनों अति उग्र पित्त को भी शान्त कर देते हैं।

त्रपुसं वालुकं वातश्लेष्मलं पित्तनाशनम्।
कालिंगं तुत्थकं वातपित्तहृच्च कसेरुकम्॥४२॥

खीरा व वालुक (फूट) वातकफवर्द्धक व पित्तनाशक होते हैं। कालिंग व तुत्थक (..........) वातपित्तहर होते हैं। कसेरु के भी यही गुण होते हैं।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः कफवातहरा मताः।
गुल्मशूलविबन्धघ्न्यो हिंगुर्वातकफापहः॥४३॥

शुण्ठी, कालीमिर्च व पीपल कफवातहर मानी गई हैं। ये गुल्म, शूल व विबन्ध को नष्ट करती हैं। हींग वात व कफ को नष्ट करती है।

यवानी धान्यकं जीरं वातपित्तकफापहम्।
सौवर्चलं विबन्धघ्नं सैन्धवं च त्रिदोषहृत्॥४४॥

अजवायन, धनिया व जीरा वातपित्त व कफ को नष्ट करते हैं। सौवर्चल लवण विबन्ध को दूर करता है। सैन्धव लवण त्रिदोषहर होता है।

एतैः सुसंस्कृतं पक्वं भ्रष्टं व्यञ्जनसौरभम्।
पेयादिकं च कट्वादीन् सर्वदोषान् व्यपोहति॥४५॥

सर्वान् दोषान्–आ., सर्वदोषान्–को.।

इन सब मसालों से अच्छी प्रकार से संस्कारित, पकाया व भूना व्यञ्जन सुगन्धित हो जाता है। तथा इन मसालों के प्रभाव से उनके कड़वेपन आदि सारे दोष दूर हो जाते हैं।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते फलशाकादि वर्गः ।।

अथेदानीं शिखरिणी कथ्यते

अर्धाढकं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः
खण्डस्य षोडश पलानि शशिप्रभस्य।
सर्पिः पलं मधु पलं मरिचं द्विकर्षं
शुण्ठ्याः पलार्धमपि चार्धपलं चतुर्णाम्।।१।।

श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टे
कर्पूरचूर्णसुरभीकृतचारुभाण्डे।
एषा वृकोदरकृता सुरसा रसाला
यास्वादिता भगवता मधुसूदनेन।।२।।

बहुत देर तक रखे दही को आधा आढक (.............) परिमाण में लें तथा चाँद सी चमकती खाँड के सोलह पल लें, घी व शहद एक-एक पल लें, मिर्च दो कर्ष लें, सौंठ आधा पल लें। .... फिर ललना (नारी) द्वारा कोमलतापूर्वक चिकने वस्त्र पर घिसते हुए इन सबको छाना जाए। तदुपरान्त इसमें यथोचित मात्रा में कर्पूर का चूर्ण डालकर सुगन्धित किया जाए। भीमसेन द्वारा बनाई गई इस प्रकार की सुरस (स्वादिष्ठ) रसाला (शिखरन) का कभी भगवान मधुसूदन से आस्वादन किया था। अतः यह भीमसेन-शिखरिणी नाम से प्रसिद्ध है।

त्रिंशत्पलानि दध्नश्च त्वगेलार्धपलं तथा।
मध्वाज्यस्य पलार्धं च मरिचानां पलार्धकम्।।३।।

पलान्यष्टौ च खण्डस्य पटे शुद्धे च धारयेत्।
कर्पूरवासिते भाण्डे छायायां स्थापयेदिदम्।।४।।

एषा शिखरिणीत्युक्ता दीपनी बलवर्धनी।
सदा पथ्या त्वियं चाद्या क्षीणे देहे तु पुष्टिदा।।५।।

आयुःप्रवृद्धिजननी सर्वरोगप्रमर्दिनी।
सा स्यात्तृड्रुजास्थैर्या नराणां सर्वदा हिता।।६।।

द्वितीया शिखरिणी

तीस पल दधि, आधा पल दालचीनी व इलायची, आधा पल मध्वाज्य (शहद व घी), आधा पल काली मिर्च एवं आठ पल खाँड लें। इन सबको स्वच्छ वस्त्र से छानकर कर्पूर से सुगन्धित पात्र में डालकर छाया में रख दें। इस प्रकार तैयार की गई यह शिखरिणी जठराग्नि-दीपनी, बलवर्द्धनी, सदा पथ्य व क्षीण व्यक्ति को पुष्ट कर देती है। यह आयुष्यवर्द्धक, सर्वरोग-नाशक होती है तथा मनुष्यों के लिए सदा हितकर मानी जाती है।

सुजातं दधि भेद्यं च वस्त्रैर्बद्ध्वा सुपीडितम्।
नानापुष्पफलारम्भं कुर्याद्दधि मनोहरम्॥७॥
कपित्थमातुलुंगैलासारिवार्द्रकबीजकैः।
शर्कराशुण्ठिसामुद्रमुद्गचूर्णैकसंयुतैः॥८॥
युक्तं दधिरसं श्रेष्ठं सुघृष्टं शोधिते पटे।
लवणेन समायुक्ता शिखरिण्यमृतोपमा॥९॥
रसाला सर्वरोगघ्नी रक्तपित्तनिबर्हणी।
(दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा॥१०॥) भोजनकु.

अच्छी प्रकार से जमे दही को वस्त्र में बाँधकर निचोड़ लें। फिर अनेक फल व फूल मिलाकर इसे अति मनोहर बनाएं। कपित्थ (कैंथ), मातुलुंग, एला, सारिवा, अदरक, बीजक, शर्करा, शुण्ठी व सामुद्र लवण तथा काली मिर्च आदि से युक्त करें। वस्त्र से छाना हुआ तथा नमक मिला हुआ यह श्रेष्ठ दधिरस रसाला शिखरिणी के नाम से प्रसिद्ध अमृततुल्य पेय है। यह रसाला सर्वरोगनाशक तथा विशेष रूप से रक्तपित्त का उन्मूलन करती है। यह दीपनी, बृंहणी, स्निग्ध, मधुर, शीतल व सर होती है।

सन्मातुलुंगस्य दलं त्वगेला
नारंगपिप्पलिसमं सितया मधूकम्।
व्योषेण वगद्याणत्रिकेण युक्ताम्
अर्धाढकं दधि समं सितवस्त्रबद्धम्॥११॥

मातुलुंग (निम्बू) का दल (छिल्का) त्वग (.......), एला, नारंगी, पिप्पली, मधूक ....

....

कर्पूरवासमपि देव तथैव पश्चाद्
युक्त्या च सम्मर्द्य कृता रसाला।
एषा कृता शिखरिणी सुरसा रसाला
सुषेणदेवेन रघोश्च हेतोः॥१२॥

तदनन्तर कर्पूर से सुगन्धित करें। युक्तिपूर्वक मसलकर तैयार की गई यह रसाला सुषेणदेव ने रघुवीर (भगवान् राम) के लिए बनाई थी।

अस्वादिता च परमप्रणयं प्रयाति
दोषांश्च सर्वान् विनिहन्ति चोग्रान्।
पित्तास्ररक्तानपि हन्ति सर्वान्
भोज्यानि सर्वाण्यपि जारयेच्च॥१३॥

अमृतप्राशशिखरिणी

इसे भगवान् राम ने अतीव प्रेमपूर्वक आस्वादित किया। यह सभी दोषों को नष्ट करती है। उग्र पित्तरक्त दोष को विशेष रूप से शान्त करती है व खाए हुए अन्न को पचा देती है।

नारंगं दाडिमं स्यात् पलमधुकयुतं मातुलिंगस्य तोयं
द्राक्षातोयं समांशं गुडदधिसहितं शर्कराजाजिमिश्रम्।
श्रेष्ठे पट्टे च घृष्टा सममरिचयुतं सैन्धवैर्वाप्य तद्वत्
निष्पीड्यं सर्वमेतत् सुरभिबहुयुता राजभोग्या मता सा॥१४॥

दाडिमं-ना., दाडिमी-को.।

नारंगी, दाडिम (अनार), एक पल मधुकयुक्त, निम्बू का रस, अंगूर का रस- इन्हें समान मात्रा में लेकर गुड व दही मिलाएं। फिर थोड़ी शर्करा, जीरा, काली मिर्च व सैन्धव लवण मिलाकर स्वच्छ वस्त्र पर घिसकर छान लें। इस प्रकार यह सुगन्धयुक्त राजाओं के द्वारा सेवनयोग्य शिखरिणी बनती है।

मातुलुंगसिताजाजीमरिचार्द्रकनागरैः।
कर्पूरसहितैर्युक्त्या दधिपर्युषिताः समाः॥१५॥
रसं सर्वेषु योगेषु बदरस्य समस्य च।
नारंगरससम्मिश्रं रसालैषामृतोपमा।
अच्छे पटे च संघृष्टा रक्तपित्तनिबर्हिणी॥१६॥

चन्द्रामृतस्राविणी शिखरिणी॥

निम्बू का रस, शर्करा, जीरा, काली मिर्च, अदरक, सौंठ व कपूर के साथ मिलाकर दही में डालें। इनमें बेर व नारंगी का रस भी मिलादें व स्वच्छ कपड़े पर घिसकर छान लें। इस प्रकार अमृततुल्य शिखरिणी बनती है। यह रक्तपित्त रोग को विशेष रूप से नष्ट करती है।

मातुलुंगकपित्थाम्लतित्तिडीकाम्लदाडिमैः।
शर्करासहितैर्युक्तं दधि पिष्टं शुचौ पटे॥१७॥
योजितं मरिचाजाजी-चातुर्जातक-भूतृणैः।
भुक्तार्द्रार्द्रकसंयुक्ता रसालामृतसन्निभा॥१८॥
सर्वरोगप्रशमनी दाहपित्तनिबर्हणी।
रक्तोद्रेकहरी पथ्या सर्ववातानुलोमनी।
एषा शिखरिणी प्रोक्ता सुषेणेन विनिर्मिता॥१९॥

मातुलुंग, कपित्थ (कैंथ) का अम्ल रस, तित्तिडी का अम्ल रस, दाडिम के साथ शर्करा मिलाकर दही में डालें व इसे स्वच्छ वस्त्र से छान लें। इसे काली मिर्च, जीरा, चतुर्जातक (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर), भूतृण, इनको उचित परिमाण में अच्छी प्रकार से मिलाएं तथा अदरक भी डालें। इस प्रकार तैयार की गई यह रसाला अमृत के समान होती है। यह सभी रोगों को शान्त करती है। विशेष रूप से दाह व पित्त को नष्ट करती है। रक्तपित्त का हरण करने वाली सबब प्रकार के वातों का अनुलोमन करने वाली यह शिखरिणी अतीव हितकारी होती है। इसे सुषेणदेव ने बनाया था।

अग्र्यं दधि गुडाजाजी-नागरार्द्रकयोजितम्।

चतुर्जातकसंसृष्टं रसालैषामृतोपमा॥२०॥

सर्वकृच्छ्रप्रशमनी सर्वातीसारनाशनी।
पित्तोद्रेकहरी पथ्या पित्तातीसारहारिणी।
सुषेणदेवेन कृता रसाला चामृतोपमा॥२१॥

उत्तम दही में गुड, जीरा, सौंठ, अदरक व चतुर्जातक मिलाएं। इनके योग से बनी यह रसाला अमृततुल्य होती है। यह सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र का शमन करने वाली, सभी प्रकार के अतिसार का निवारण करने वाली, पित्त की अधिकता को शान्त करने वाली तथा पित्तजन्य अतिसार का हरण करने वाली उत्तम पथ्य के रूप में सुषेणदेव ने बनाई थी।

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते शिखरिणीवर्गः ॥

अथ व्यंजनवर्गः

हिंगूषणाजाजिमहौषधानि
चूर्णीकृतं तत् त्रिगुणं क्रमाच्च।
सन्दीप्यकं सूरणयूषमांसं
रसप्रयोगेषु च पथ्यमिष्टम्॥१॥

नित्यमिष्टम्-को.ना., पथ्यमिष्टम्-आ.।

हींग, कालीमिर्च, जीरा, सौंठ इन्हें उत्तरोत्तर तिगुना लेकर चूर्ण कर लें। अर्थात् हींग से तिगुनी कालीमिर्च, कालीमिर्च से तिगुना जीरा तथा जीरे से तिगुनी सौंठ लेकर चूर्ण बना लें। ....
....

यवानीजीरकैस्तुल्यैस्तयोर्द्विगुणसूरणम्।
ईषत्त्र्यूषणसंयुक्तं ततो व्यञ्जनसौरभम्॥२॥

ईषद्व्योषसमायुक्तं-अ., ईषत्त्र्यूषणसंयुक्तं-आ.।

अजवायन, जीरा समान मात्रा में लें, इनसे दुगुना सूरण (.......) लें। इसमें थोड़ा सा त्रिकटु मिलाकर जो व्यञ्जन तैयार होता है, वह व्यञ्जन सौरभ कहलाता हे।

सर्वरोगहरं पथ्यं वातदुर्गमनाशनम्।
शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः समभागा विचूर्णिताः॥३॥

वातदुर्नाम०-अ.आ., वातदुर्गम०-ना.।

सौंठ, काली मिर्च व पीपल को समान भाग में लेकर बनाया गया त्रिकटु नामक चूर्ण सर्वरोगहर होता है तथा दुःसाध्य वातरोगों को भी शान्त कर देता है।

चव्यचित्रककापित्थं सारमुद्धृत्य यत्नवान्।
सैन्धवेन समोपेतं तक्रं च क्वाथयेन्नरः॥४॥

यत्नतः-अ., यत्नवान्-ना.आ.।

एतद्वै व्यञ्जनं श्रेष्ठं सर्ववात-निवारणम्।
आमवात-प्रशमनं सर्वशूल-निवारणम्॥५॥

एतत्तु-अ., एतद्वै-आ.। सर्ववात-निबर्हणम्-अ., सर्ववात-निवारणम्-आ.।

महागुल्मप्रशमनं सुषेणेन कृतं नृणाम्।
सर्ववातामये शस्तं नृणां भेषजमुत्तमम्॥६॥

चव्य, चित्रक व कपित्थ का सार (कस) यत्नपूर्वक निकालें, इसे सैन्धव के साथ तक्र में मिलाकर उबालें। यह वातरोगों को नष्ट करने वाला, आमवात को शान्त करने वाला व सभी शूलों का निवारण करने वाला एक श्रेष्ठ व्यञ्जन है। सुषेण द्वारा मनुष्यों के हित के लिए बताया गया यह व्यञ्जन प्रचण्ड् गुल्मरोग को शान्त कर देता है तथा सभी वातरोगों में मनुष्यों के लिए उत्तम औषध है।

मरीचं दीप्यकं शुण्ठी चव्यं चित्रकमेव च।
पिप्पली-पिप्पलीमूलं धान्यकाजाजिसैन्धवम्॥७॥

जरणं दाडिमं पथ्या आमलं हृद्यगन्धकम्।
एतत्कल्कसमं मिश्रं पक्त्वा तक्रं सपिण्डकम्॥८॥

एतत्कल्कसमं मिश्रं पक्वतक्रसपिण्डकम्-आ., एतत्कल्कसमं मिश्रं सुपक्वं तक्रसंयुतम्-अ.उ.।

वातश्लेष्महरा हृद्या परमा रुचिवर्द्धनी।

आमातीसारशूलघ्नी वातपित्तनिकृन्तनी॥९॥

वातगुल्मनिकृन्तनी-अ.उ., वातपित्तनिकृन्तनी-आ.।

कासश्वासहरा चोक्ता मन्दाग्नेर्दीपनी परा।
उक्ता चैव सदा पथ्यात्युत्तमा कढिका स्मृता॥१०॥ कढी

काली मिर्च, दीप्यक (अजवायन), सौंठ, चव्य, चित्रक, पीपल, पीपलामूल, धनिया, अजाजी (जीरा), सेंधानमक, जरण (कालानमक), अनार, पथ्या (हरड़), आंवला, हृद्यगन्धक (सफेद जीरा) इनके समान मात्रा वाले कल्क (लुग्दी) को बेसन मिली छाछ में बनाएं। इस प्रकार कढ़ी तैयार होती है।

यह वातकफ को दूर करने वाली, हृद्य (मन को भाने वाली) एवं अत्यन्त रुचिकारी होती है। कढ़ी आमातिसार, शूल तथा वातगुल्म का नाश करने वाली मानी जाती है। उक्त प्रकार से बनाई गई कढ़ी खांसी, दमा को नष्ट करने वाली, मन्दाग्नि को दीप्त करने वाली व सदा उत्तम पथ्य मानी गई है।

जरणमरिचशुण्ठीपिप्पलीमूलचव्यं
दहनरुचकधान्यं सैन्धवं पिप्पलीनाम्।
अभयसमकपित्थं दाडिमाजाजिहिंगु
युवतिकरविपक्वं चामलक्यं सुतक्रम्॥११॥

जरण (कालानमक), कालीमिर्च, सौंठ, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, रुचक (.....), धनिया, सैन्धवलवण, पिप्पली, हरड़, कपित्थ, अनार, जीरा, हींग इन सबको आंवले व तक्र के साथ पकाने से उत्तम व्यञ्जन तैयार होता है।

हरति पवनसंघं श्लेष्मदोषं सकृच्छ्रं
अरुचिजठरशूलं सामवातातिसारम्।
वदति सकलविद्यो वैद्यराजः सुषेणो
रचितदहनदीप्ति व्यञ्जनं राजयोग्यम्॥१२॥

सकासं-अ., सकृच्छ्रं-आ.।

यह व्यञ्जन वातविकारों के समूह को नष्ट कर देता है। कफ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, पेटदर्द, आमवात व अतिसार को दूर करता है। अतुल विद्या वाले वैद्यराज सुषेण इसके विषय में कहते हैं कि– अग्नि की दीप्ति करने वाला यह उत्तम व्यञ्जन राजा के लिए योग्य होता है।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरकं च
कपित्थगिरिसमं स्याच्चित्रकं पिप्पली च।
समधृतविधिचूर्णं तत्र संयोजितव्यं
कथितमिह समानं चार्द्धभागेन युक्तम्।।१३।।

त्रिकटु, अजमोदा, सेंधानमक, जीरा, कपित्थ, चित्रक, पिप्पली इन सबके समान भाग से बनाया गया चूर्ण ....

....

कृतलवणसुधान्यं मातुलिंगस्य सारं
कफपवनविकारे सर्वदा व्यञ्जनं स्यात्।
..
..।।१४।।

वाताश्रिते शिखिनि पार्श्वशूले
सगृध्रसीं हन्ति चिरप्रवृद्धाम्।
..
..।।१५।।

सुषेणदेवेन कृता रसाला सुसौरभा रोगहरातिपथ्या।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते व्यञ्जनवर्गाः ।।

व्यायामोद्वर्तनाभ्यंगस्नानगुणाः

अथ व्यायामोद्वर्तनाभ्यंगमर्दनस्नानगुणाः कथ्यन्ते–

श्रीनारायणबालचम्पकजपातैलेन चान्येन वा
कार्यं मर्दनकोविदै रसभुजां मल्लैः सदा मर्दनम्।
चातुर्जातलवंगकुंकुमनिशामुक्तासुमांसीभवै–

श्चूर्णैर्भृष्टमसूरमुद्‌गसयवैरुद्वर्त्तनं कारयेत् ॥१॥

पौष्टिक भोजन करने वाले लोगों को मर्दन कला (मालिश) में निष्णात मल्लों (पहलवानों) से मर्दन (अभ्यंग) करवाना चाहिए। इसके लिए श्रीनारायण तेल, बालचम्पक तेल, जपा तेल अथवा किसी अन्य तेल का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र व नागकेशर), लवंग, कुंकुम, निशा (हल्दी), मुक्ता (रास्ना) व मांसी- इनके चूर्ण से व भुने मसूर, मूंग व जौ के आटे से बना उबटन करवाना चाहिए।

वातघ्नौषधसिद्धेन तैलेनाभ्यंगमर्दनम् ।
न रूक्षमर्दनं कुर्यात्तद्धि वातप्रकोपनम् ॥२॥

वातनाशक औषधियों से तैयार किए गए तेल से अभ्यंगमर्दन अर्थात् मालिश करवानी चाहिए। सूखी मालिश नहीं करवानी चाहिए, इससे वातप्रकोप हो जाता है।

अधिगतसुखनिद्रः सुप्रसन्नेन्द्रियात्मा
सुलघुजठरवृत्तिर्भुक्तपक्तिं दधानः।
श्रमभरपरिखिन्नः स्नेहसम्मर्दितांगः
सवनगृहमुपेयाद् भूपतिर्मर्दनाय ॥३॥

रात को सुखपूर्वक नींद ले चुका तथा सुप्रसन्न इन्द्रियों व मन वाला, हल्के पेट वाला तथा जिसका भोजन पच चुका है, ऐसा राजा तेल से अंग मर्दन (मालिश) करवाए तथा व्यायाम करके थकने पर मल-मलकर स्नान करने के लिए स्नानघर में जावे।

अभ्यंगः श्रमवातहा बलकरः कायस्य दार्ढ्यावहः
स्यादुद्वर्त्तनमंगकान्तिकरणं मेदःकफालस्यजित्।
आयुष्यं हृदयप्रसादि वपुषः कण्डूक्लमच्छर्दिहृत्
स्नानं देव यथर्तुसेवितमिदं शीतैरशीतैर्जलैः ॥४॥

अभ्यंग अर्थात् मालिश थकान व वातविकारों को दूर करती है। यह बलवर्द्धक होती है व शरीर में दृढ़ता लाती है। उबटन अंगों में कान्ति लाता

है तथा मेद व कफ को दूर करता है। स्नान से स्वास्थ्य व आयु की वृद्धि होती है। हृदय प्रसन्न होता है, शरीर के मल, खुजली, क्लम व छर्दि आदि कष्ट दूर होते हैं। अतः हे राजन् ! ऋतु के अनुसार शीतल या उष्ण जल से नित्यप्रति स्नान अवश्य करना चाहिए।

सामर्थ्यं सकलक्रियासु लघुतां त्वंगेषु दीप्तिं परा-
मग्नेः पाटवमिन्द्रियेषु लघुतां छेदं परं मेदसः।
उत्साहं मनसः शरीरदृढतां शान्तिं बलाद् व्यापदां
व्यायामः शिशिरे वसन्तसमये कुर्याद्धिमे सेवितः ॥५॥

सेविनम्-को., सेवनम्-अ.आ., सेवनां-ना., सेवितः इति ऊहितपाठः।

व्यायाम सभी (शारीरिक व मानसिक) क्रियाओं में सामर्थ्य व लघुता अर्थात् स्फूर्ति लाता है। अंगों में कान्ति पैदा करता है। जठराग्नि को तीव्र करता है। इन्द्रियों में लघुता पैदा करता है। चर्बी की छटाई कर देता है। मन में कार्यों के प्रति उत्साह पैदा करता है। शरीर में दृढ़ता लाता है। रोगों को हठात् (बलपूर्वक) शान्त कर देता है। अतः शिशिर, वसन्त व हेमन्त में अवश्य ही व्यायाम करना चाहिए। अन्य ऋतुओं में भी हल्का व्यायाम आवश्यक है।

वातामयी पित्तरुजान्वितश्च
बालोऽतिवृद्धोऽतिकृशोऽतिजीर्णः।
मन्दानलः स्निग्धरसान्नवर्जी
व्यायामकालेषु विवर्जनीयाः॥६॥

वातरोगी, पित्तरोगी, बालक, अतिवृद्ध, अतिकृश व अतिदुर्बल मन्दाग्नि वाले, स्निग्ध अन्न का भोजन न करने वाले- ये सब व्यक्ति व्यायाम के लिए वर्जित हैं- अर्थात् इन्हें व्यायाम नहीं करना चाहिए।

स्थाल्यां यथाऽनावरणाननायां
न घट्टितायां न च साधुपाकः।
अनाप्तनिद्रस्य तथा नरेन्द्र !
व्यायामहीनस्य न चान्नपाकः॥७॥

जैसे ढ़क्कन रहित स्थाली (देगची/बटलोई) में डाला गया अन्न बिना चलाये ठीक प्रकार से नहीं पकता है, हे राजन्! उसी प्रकार नींद न लेने वाले तथा व्यायाम न करने वाले व्यक्ति का खाया हुआ अन्न भी नहीं पचता है।

वातव्याधिहरं कफप्रशमनं कान्तिप्रसादावहं
त्वग्वैवर्ण्यविनाशनं रुचिकरं सर्वांगदार्ढ्यप्रदम्।
अग्नेर्दीप्तिकरं बलोपजननं प्रस्वेदमेदोपहं
पद्भ्यां मर्द्दनमुद्दिशन्ति मुनयः श्रेष्ठं सदा प्राणिनाम्॥८॥

पैरों पर तेल की मालिश करना वातरोगनाशक, कफशामक, कान्ति व वर्णप्रसाद (रंग का निखार) करने वाला, त्वचा के मलिन वर्ण को दूर करने वाला, रुचिकर व सब अंगों में दृढ़ता लाने वाला होता है। यह जठराग्नि को दीप्त करने वाला, बल पैदा करने वाला, पसीने व मोटापे को दूर करने वाला होता है। इसलिए पैरों पर अभ्यंग (तेल मर्दन) को मुनिजन सभी प्राणियों के लिए विशेषरूप से लाभदायक बतलाते हैं।

सुकुमारस्य मन्दाग्नेः किञ्चित्क्षीणबलस्य च।
पित्तलस्यापि नो कार्यं कदाचित् पादमर्दनम्॥९॥

सुकुमार अर्थात् नाजुक प्रकृति वाले मन्दाग्नियुक्त व्यक्ति का पादमर्दन (पैरों पर अभ्यंग) नहीं करना चाहिए। दुर्बल एवं पित्त की अधिकता वाले व्यक्ति का पादाभ्यंग भी नहीं करना चाहिए।

व्यायामखिन्नगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः॥१०॥

व्यायाम से शरीर को थका देने वाले तथा पैरों पर अभ्यंग करने वाले व्यक्ति के पास रोग उस प्रकार नहीं फटकते, जिस प्रकार गरुड़ के पास सर्प नहीं फटकते।

सुवर्णवर्णं कुरुते शरीरं
दृढत्वमंगेषु ददाति सद्यः।
सर्वक्रियालाघवमातनोति

सम्मर्द्दनं मल्लकरैः कृतं यत्॥११॥

मल्लों (पहलवानों) के हाथों से किया गया मर्दन (मालिश) शरीर को सुवर्णवर्ण (सोने जैसा कान्तिमान्) बना देता है तथा अंगों में शीघ्र ही दृढ़ता ला देता है। इस प्रकार किया गया मर्दन मनुष्य को सभी कार्यों में स्फूर्तिमान् बना देता है।

विशेष- यहाँ मल्ल/बलवान् व्यक्ति के हाथों से मर्दन का विधान इसलिए किया है कि इससे मालिश व एक्यूप्रेशर- इन दोनों के लाभ प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में शरीर के विशिष्ट बिन्दुओं को दबाकर मालिश करने की कला को 'संवाहन कला' कहते थे। यह एक उत्तम कला के रूप में प्रसिद्ध थी। इसमें निष्णात व्यक्ति संवाहक कहलाते थे। ये राजा, श्रेष्ठी व धनी मानी लोगों की सेवा में रहते थे। महाकवि शूद्रक के नाटक 'मृच्छकटिक' में इस कला की चर्चा मिलती है। वहाँ 'संवाहन कला' को 'सुकुमार कला' कहा गया है।

वातव्याधीञ्जयति कुरुते सर्वगात्रेषु पुष्टिं
दृष्टिं मन्दामपि वितनुते वैनतेयोपमां च।
निद्रासौख्यं जनयति जरां हन्ति शक्तिं विधत्ते
धत्ते कान्तिं कनकसदृशीं नित्यमभ्यंगयोगात्॥१२॥

वातव्याधिं जयति-अ., वातव्याधीञ्जयति-ना.।
कान्तं चैतत्कनकसदृशं-ना., कान्तिं चैतत्कनकसदृशीं-अ., धत्ते कान्तिं कनकसदृशीं-को.।

नित्यप्रति अभ्यंग (तेल-मर्दन) वातरोगों को जीत लेता है। सारे अंगों में पुष्टि लाता है। दुर्बल नेत्रज्योति को भी गरुड़ की नेत्रज्योति के समान तीव्र कर देता है। सुखपूर्ण नींद लाता है। वृद्धावस्था के प्रभाव को रोकता है। शरीर में शक्ति लाता है तथा सोने जैसी कान्ति पैदा कर देता है।

दृष्टिं निर्मलतारकां प्रकुरुते हन्याच्च मूर्द्धामयान्
केशान्नीलघनोपकुञ्चितमृदु स्निग्धातिदीर्घाकृतीन्।
सद्यः संविदधाति लाघवकरं मूर्ध्नो जडत्वापहं-

यूकालिक्षमलापनोदनपटु श्रेष्ठं शिरोभ्यञ्जनम्॥१३॥

०दीर्घान् कृमीन्-को., ०दीर्घाकृतीन्-अ.।

सिर के ऊपर नित्यप्रति तेल का अभ्यंग करने से दृष्टि निर्मल हो जाती है, मस्तिष्क के रोग नष्ट हो जाते हैं। बाल चिकने, काले, घुंघराले व लम्बे हो जाते हैं। सिर में लघुता (हल्केपन) का अनुभव होता है तथा मस्तिष्क की जड़ता दूर होती है। यूका (जूं), लिक्षा (लीक) व सिर के मल दूर हो जाते हैं। इस प्रकार सिर पर तेल मालिश करना बहुत ही श्रेष्ठ एवं लाभदायक होता है।

कषायमधुरैः स्निग्धैः मनोहृद्यैः सुकोमलैः।
उद्वर्त्तनं ततः कुर्यात् सुपिष्टैश्च सुगन्धिभिः॥१४॥

कषाय, मधुर, स्निग्ध, सुकोमल, मनभावन व सुगन्धित एवं अच्छी प्रकार से तैयार किए गए पिष्टों (पिट्ठियों) से उबटन करना चाहिए।

मेदोदोषहरं मलोपशमनं दौर्गन्ध्यनिर्नाशनं
प्राणास्तर्पणकं बलोपजननं श्लेष्मामयध्वंसनम्।
व्यायामश्रमशान्तिकारकमति स्वच्छन्दनिद्रासुखं
चूर्णोद्वर्त्तनमुद्दिशन्ति मुनयः श्रेष्ठं सुपिष्टं जलैः॥१५॥

उद्वर्त्तन (उबटन) चर्बी की अधिकता को कम करने वाला, मलों का निवारण करने वाला, दुर्गन्ध को नष्ट करने वाला, प्राणशक्ति को बढ़ाने वाला, बलकारक और कफरोगों का नाशक होता है। उबटन करने से व्यायाम की थकान शान्त हो जाती है तथा बड़ी ही चैन की नींद आती है। इसलिए उत्तम जल व पिष्ट से तैयार किए गए उद्वर्त्तन को मुनिजन बहुत ही लाभप्रद बतलाते हैं।

नैर्मल्यं वपुषः करोति कुरुते निष्पापमूर्तिं परां
पुण्यं वर्द्धयति त्वचं च रचयेद्वर्णप्रभाकोमलाम्।
कण्डूं हन्ति रतिश्रमं विघटयत्यंगेषु सौख्यप्रदं
शुक्रौजोबलवर्द्धनं रतिकरं स्नानं सुखोष्णाम्भसा॥१६॥

सुखोष्ण (गुनगुने) जल से स्नान शरीर को निर्मल व दोषरहित कर

देता है। पुण्य को बढ़ाता है- अर्थात् स्नान करने के उपरान्त निर्मल शरीर व प्रसन्न मन से भगवद्-भजन व अन्य धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान से पुण्य की वृद्धि होती है। कोष्ण (गुनगुने) जल से स्नान त्वचा को कोमल व कान्तिमान् बनाता है। खुजली दूर करता है। रतिश्रम (सुरतखेद) का निवारण करता है। अंगों के लिए सुखप्रद होता है। शुक्र, ओज व बल को बढ़ाता है तथा प्रसन्नताजनक होता है।

शिरःस्नानमनुष्णेन जलेनेन्द्रियबोधनम्।
केशवृद्धिकरं शैत्यात् सन्तर्पणमिहोच्यते॥१७॥

०बोधकम्-अ., ०बोधनम्-आ.को.।

अनुष्ण अर्थात् ताजे जल से शिरःस्नान इन्द्रियों को चेतन करने वाला होता है। यह केशों की वृद्धि करता है तथा शीतल होने से मस्तिष्क का सन्तर्पण करने वाला होता है।

शिरोवर्ज्यमथांगानि क्षालयेदुष्णवारिणा।
बलवर्णदृढांगत्वमंगानां तेन जायते॥१८॥

सिर को छोड़कर अन्य अंगों को किञ्चित् उष्ण जल से प्रक्षालित करना चाहिए। इससे अंगों में बल, वर्ण व दृढ़ता उत्पन्न होती है।

ईषदम्लेन कर्तव्या काञ्जिकेन खलिः पुनः।
श्लक्ष्णगोधूमचूर्णेन सहिता पाचिताग्निना॥१९॥

सिर का मैल दूर करने के लिए अल्प अम्लता वाली काञ्जी एवं स्निग्धता वाले गेंहू के आटे से अग्नि पर पकाकर खली बनानी चाहिए। इसके मर्दन से सिर का मल दूर हो जाता है।

अत्यम्लचिञ्चादिफलैर्विपक्वा
कुर्यात्खलिः सा खलु दृष्टिमान्द्यम्।
कण्डूं च तापं शिरसि प्रकुर्यात्
पतन्ति केशाश्च तदम्लभावात्॥२०॥

कण्डूश्च-को., कण्डूं च-अ.आ.।

बहुत अधिक खट्टे इमली फल आदि के द्वारा पकाकर बनाई गई खली का सिर पर प्रयोग करने से नेत्रज्योति मन्द हो जाती है। इससे सिर में खुजली व जलन भी होती है तथा अधिक खटाई के प्रभाव से बाल भी झड़ जाते हैं। अतः इस प्रकार की खली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

तस्मान्न चाम्लं मधुरं न चापि
तैलापनोदाय खलिप्रकारम्।
कुर्याच्च राज्ञो भिषगप्रमत्तः
केशोच्चये नेत्रबले च तस्य॥२१॥

इसलिए पूर्वोक्त अम्लता की अधिकता वाली निषिद्ध खली का प्रयोग शिरोभ्यंग के पश्चात् केशों की चिकनाई दूर करने हेतु नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार मधुर रस वाली खली का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। राजा आदि के केशोच्चय (केश-समूह) व नेत्रबल का ध्यान रखते हुए वैद्य को इनके प्रयोग से बचना चाहिए।

सौवर्णरौप्यभाण्डस्थैर्वारिभिर्वस्त्रगालितैः।
स्वच्छैः सुनिर्मलैः शीतैः नदीवेगप्रवाहिभिः॥२२॥

सुवर्णमय व रजतमय भाण्डों में स्थित वस्त्र से छाने गए स्वच्छ, सुनिर्मल, शीतल व नदी के वेग में प्रवाहित जलों के द्वारा राजा को स्नान करना चाहिए।

अथ गम्भीरवापीनां न तु कूपतडागयोः।
प्रसन्नैर्मधुरास्वादैर्लघुभिः स्निग्धकान्तिभिः॥२३॥

इसी प्रकार गम्भीर वापी (गहरी बावड़ी) के स्वच्छ, मधुर, हल्के व स्निग्ध कान्ति वाले जलों से स्नान करना चाहिए। कूप व तडाग के जल से तो स्नान नहीं करना चाहिए।

हितोपनीतैस्तत्कालमन्येनास्वादितैरपि।
तात्कालितैर्जलैः स्नानं कुरुते नृपतिः सदा॥२४॥

हितैषी लोगों के द्वारा लाए गए ताजे, अन्य के द्वारा अनास्वादित

(उपयोग में न लाये गए) जल से राजा को स्नान करना चाहिए।

सक्षारं जन्तुदुष्टं बहुमलकलुषं दुर्जरं कृष्णवर्णं
पीतं रक्तं विवर्णं त्वरुचिकरमथो नीरसं पूतिगन्धम्।
स्वादे तिक्तं कषायं कटुलवणरसं स्याज्जलं वा यदम्लं
यच्चात्युष्णातिशीतं न खलु नरपतेर्मज्जनं तेन कुर्यात्॥२५॥

खारे, जन्तुओं द्वारा दूषित किए गए, बहुत मलिन, कलुष (गदले), दुर्जर, काले, पीले, लाल, विवर्ण (विकृत वर्ण वाले), अरुचिकर, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, स्वाद में तिक्त, कषाय, कटु, लवणरसयुक्त, अम्ल रस वाले, अत्यन्त उष्ण व अतिशीतल जल से राजा को स्नान नहीं करना चाहिए।

।। इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते मर्द्दनाभ्यंगस्नानगुणवर्गाः ।।

भोजनवर्गः

अथेदानीं भोजनविधिः कथ्यन्ते-

स्नानं विधाय विधिवत् कृतदेवकार्यः
सन्तर्प्पितातिथिजनः सुमनाः सुकार्यः
आप्तैर्वृतो रहसि भोजनकृच्च सात्म्यात्
सायं तथा भवति भुक्तिकरोऽभिलाषः॥१॥

प्रातः विधिवत् स्नान व देवपूजन (सन्ध्या, अग्निहोत्र) आदि कर, अतिथियों को तृप्त कर, प्रसन्नमना व उत्तम कर्त्तव्यों में संलग्न राजा आप्त (विश्वसनीय) लोगों के साथ एकान्त में इस प्रकार भोजन करे कि जिससे सायंकाल पुनः खाने की इच्छा हो जाए।

नित्याचारपवित्रनिर्मलतनुर्धौतप्रसन्नाम्बरो
हृष्टो भोजनवेश्मनि स्थिरतरे मृद्वासने संविशेत्।
पुत्रैः सन्ततिभिस्तथा परिजनैराप्तैर्वृतः सर्वतः
सद्वैद्यैश्च नियोगिभिः सुचरितैस्तन्त्रोपयुक्तैर्नृपः॥२॥

इस प्रकार सन्ध्यावन्दन, अग्निहोत्र आदि नित्याचार से पवित्र मन व निर्मल शरीर वाला राजा अच्छी प्रकार धोए हुए शुद्ध वस्त्रों को धारण

करके प्रसन्नचित्त होकर भोजनगृह में आवे। वहाँ अच्छी तरह व्यवस्थित सुन्दर कोमल आसन पर बैठे। पुत्र व अन्य सन्ततियों व आप्त (विश्वासपात्र) परिजनों, सेवकों व वहाँ नियुक्त श्रेष्ठ एवं कुलीन सच्चरित्र वैद्यों के साथ भोजन के लिए बैठे।

सद्यः शालेयमन्नं शशिकरनिकरप्रोज्वलं सिद्धसारं
भ्राम्यद्वाष्पच्छलेन त्रिदशपुरसुधाधेयमाधुर्यतत्त्वम्।
अन्योन्यं नैव लग्नं परिमलभरितागारवेदीविभागं
सम्प्राप्नोति प्रसन्नं प्रथमपरिदृढो यस्य पुंसां वरस्य॥३॥

उष्णोदनो भ्रममदात्ययरक्तपित्त-
मेहप्रदः कृमिहरः कसनार्तिनिघ्नः।
आध्मानगुल्मक्षतकासहिक्का-
श्वासापहः पवनह्लल्लघुदीपनश्च॥४॥

पवनकृल्लघुदीपनश्च-को., पाचनदीपनश्च-ना.,
पवनह्लल्लघुदीपनश्च-शोधितपाठः।

शीतोदनं शीतलमग्निसाद-
श्वासप्रसेकानिलविड्विबन्धान्।
कुर्यादसृक् पित्तहरश्च मेह-
मूर्छाभ्रमच्छर्दिमदात्ययघ्नः॥५॥

आजानुस्थापनीयं कनकमयमथो रौप्यमग्रे सुपात्रं
स्फारं तस्योपरिष्टात्कनकविरचिता वाटिका मण्डलिन्यः।
भक्तं सोष्मं सबाष्पं शशिकरधवलं कुन्दिकाकुड्मलाभं
मध्ये स्थाप्यं सुरूपं बहुसुरभिघृतं दक्षिणे स्वर्णपात्रे॥६॥

तदनन्तर घुटनों के बराबर ऊँचाई वाली पीठिका पर सोने या चाँदी का पात्र रखकर उसके ऊपर सोने से निर्मित गोलाकार पत्रियाँ स्थापित करें। तत्पश्चात् चन्द्रमा की किरणों व कुन्दकलिकाओं के समान श्वेत तथा वाष्पयुक्त गर्मागर्म भात सूप के साथ उस पात्र के बीच में डालें। दाहिनी ओर स्वर्णपात्र में सुगन्धित घृत रखें।

भक्ष्यं तैलाज्यपक्वं बहुविधरचनाकल्पितं सूपकारै-

रन्योन्यै साभिमानैस्तदपि च सकलं जांगलानूपमांसम्।
दद्यात् तत्रैव पार्श्वे सुरभि रुचिकरं दक्षिणे वामभागे
लेह्यं चोष्यं च पेयं भवति च कठिनो भक्ष्यवर्गः पुरस्तात्॥७॥

मद्यं-आ., सद्यः-ला., दद्यात्-भोजनकुतूहल में उद्धृत पाठ।

भुने या तेल व घी आदि में पकाए हुए एवं अनेक प्रकार से कल्पित पौष्टिक खाद्य पदार्थों को रखें, जो एक-दूसरे से स्पर्धा करने वाले सूपकारों (रसोइयों) ने उत्तम रूप से सिद्ध किए हों। पास में ही दक्षिण व वाम भाग में सुगन्धित रुचिकर लेह्य, चोष्य व पेय पदार्थों को भी रखना चाहिए। सम्मुख भाग में ठोस भक्ष्य पदार्थों को रखना चाहिए।

आदौ घृतं च सूपं च तथा कुर्याद्यथा पिबेत्।
घृतेन सम्प्लुतं ह्यन्नं पाचनं सुखकारि च ॥८॥

सुखकारकम्-आ., सुखकारि च-अ.ना.।

भोजन के आरम्भ में घी व सूप्य (दाल) को इस प्रकार मिलाएं जिससे उसे पी सकें, क्योंकि घृत से आप्लुत अर्थात् तर किया हुआ अन्न सुपाच्य व सुखकारी होता है।

चारायणो निशि निमिः पुनरस्तकाले
मध्यन्दिने हि धिषणश्चरकः प्रभाते।
भुक्तिं जागाद नृपतेर्मम चैष सर्ग-
स्तस्याः स एव समयः क्षुधितो यदैव॥९॥

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने राजाओं के लिए भोजन का भिन्न-भिन्न समय कहा है। जैसे- चारायण ने रात्रिकाल, निमि ने सूर्यास्तकाल, धिषण (बृहस्पति) ने मध्याह्नकाल तथा चरक ने प्रभातकाल बताया है, परन्तु मेरा (सुषेण का) तो स्पष्ट रूप से यही मत है कि- भोजन का समुचित काल वही है, जब अच्छी प्रकार से भूख लगी हो।

यः क्षुधा लौल्यभावेन कुर्यादाकण्ठभोजनम्।
सुप्तव्यालानिव व्याधीन् सोऽनर्थाय प्रबोधयेत्॥१०॥

जो भूख होने पर रसासक्ति से गले तक भोजन कर लेता है अर्थात्

मात्रा से अधिक खा लेता है, मानो वह शरीर में सोए रोगरूपी सर्पों को अपने अनर्थ के लिए जगा देता है।

यः कोकवन्महाकामी स नक्तं भोक्तुमर्हति।
स भोक्ता वासरे यश्च रात्रिरेताश्चकोरवत्॥११॥

जो व्यक्ति कोक (चक्रवाक/चकवा) पक्षी के समान दिवाकामी (दिन में रतिक्रीडा करने वाला) हो, वह रात को खा सकता है तथा जो चकोर पक्षी के समान रात्रिकामी हो, वह दिन में खा सकता है।

हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचेरपायतः।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं वैद्यविद्याविदां वरैः॥१२॥

सूर्य के अस्त होने पर हृदय और नाभिकमल का संकोच हो जाता है। अतः रात को खाए भोजन का पाचन समुचित रूप से नहीं हो पाता है। इसलिए वैद्यविद्या (आयुर्वेद) को जानने वाले उत्तम विद्वानों द्वारा रात को भोजन करना उचित नहीं माना जाता है।

देवार्चां भोजनं निद्रामाकाशे न प्रकल्पयेत्।
नान्धकारे न सन्ध्यायां नाविताने निकेतने॥१३॥

देवपूजा, भोजन एवं निद्रा- इन्हें खुले में न करें। ये कार्य अन्धकार व सन्ध्याकाल में भी वर्जित हैं। बिना छत वाले घर में भी इन कार्यों को नहीं करना चाहिए।

भुक्तौ स्वापे मलोत्सर्गे यः सम्बाधासमाकुलः।
निःशंकत्वात्ययात्तस्य के के न स्युर्महामयाः॥१४॥

भोजन, शयन व मलोत्सर्ग के लिए एकान्त न मिलने पर भीड़-भाड़ से आशंकित व्यक्ति उक्त कार्यों को लज्जा आदि के कारण उचित रूप से नहीं कर पाता है, जिससे बड़े-बड़े रोग हो जाते हैं।

विवर्णास्विन्नविक्लिन्नविगन्धं विरसस्थिति।
अतिजीर्णमसात्म्यं च नाद्यादन्नं न चाविलम्॥१५॥

जिसका रंग बदल गया हो, जो अच्छे से न पका हो, जो विक्लिन्न

(पानी छोड़ चुका) हो, दुर्गन्धयुक्त हो, रसरहित हो, अति पुराना हो या असात्म्य (प्रतिकूल) हो, ऐसा भोज्य पदार्थ नहीं खाना चाहिए। इसी प्रकार मलिन अन्न भी कभी नहीं खाना चाहिए।

काम-कोपातपायासा यान-वाहन-वह्नयः।
भोजनानन्तरं सेव्या न जातु हितमिच्छिता॥१६॥

अपना हित चाहने वाले व्यक्ति को भोजन के तुरन्त बाद काम, क्रोध, आतप (धूप) व परिश्रम का सेवन नहीं करना चाहिए तथा यान (रथ, गाड़ी आदि) की सवारी एवं वाहन (अश्व आदि) की सवारी भी नहीं करनी चाहिए। भोजनोपरान्त आग के पास बैठने से भी बचना चाहिए।

हितं परमितं पक्वं नेत्रनासारसाप्रियम्।
परीक्षितं च भुञ्जीत न द्रुतं न विलम्बितम्॥१७॥

हितकर, परिमित, अच्छी प्रकार पका हुआ, आँख, नाक व जीभ को प्रिय लगने वाला अर्थात् सुन्दर, सुगन्धित, स्वादिष्ठ एवं सुपरीक्षित भोजन करना चाहिए। भोजन बहुत शीघ्र व बहुत धीरे-धीरे भी नहीं करना चाहिए।

अत्यशनमध्यशनं समशनमहिताशनं च सन्त्याज्यम्।
कुर्याद्यथोक्तमशनं बलजीवितपेशलं क्रमशः॥१८॥

अत्यशन (अति भोजन), अध्यशन (खाने के पश्चात् शीघ्र फिर खाना), अनशन (सर्वथा न खाना) तथा समशन अर्थात् दूध-मूली आदि विरोधी भोज्य पदार्थों का एक साथ खाना, इन सबका त्याग कर देना चाहिए। आयुर्वेद के निर्देशानुसार ऐसा भोजन करना चाहिए, जो क्रमशः बल व जीवन को बढ़ाने वाला हो।

आदौ स्वादु स्निग्धं तन्मध्ये लवणमम्लमुपभोज्यम्।
रूक्षं द्रव्यं च पश्चान्न च भुक्ते भक्षयेत् किञ्चित्॥१९॥

प्रारम्भ में मधुर व स्निग्ध, मध्य में नमकीन व अम्ल भोज्यों का सेवन करना चाहिए। भोजन के अन्त में रूक्ष पदार्थ खाना चाहिए। भोजन

करने के पश्चात् कुछ नहीं खाना चाहिए।

मन्दस्तीक्ष्णो विषमः समश्च वह्निश्चतुर्विधः पुंसाम्।
लघु मन्दे गुरु तीक्ष्णे स्निग्धं विषमे समं समे च स्यात्॥२०॥

मन्द, तीक्ष्ण, विषम व सम भेद से मनुष्यों की जठराग्नि चार प्रकार की कही गई है। अतः जठराग्नि के मन्द होने पर लघु, तीक्ष्ण होने पर गुरु, विषम होने पर स्निग्ध तथा सम होने पर सम भोजन करना चाहिए।

विषमिश्रित अन्न की पहचान-

ध्वांक्षः स्वरान् विकुरुतेऽत्र पिकात्मजश्च
बभ्रुः शिखण्डितनयश्च भवेत् प्रहृष्टः।
क्रौञ्चः प्रमोदति विरोति च ताम्रचूडः
छर्दिं शुकः प्रतनुते हदते कपिश्च॥२१॥

भोजन में विष दिखने से कौआ व कोयल शब्द करने लगते हैं, बभ्रु (नकुल/नेवला) व मयूर प्रसन्न होते हैं, क्रौञ्च भी प्रमुदित होता है, मुर्गा चिल्लाता है, तोते को वमन होने लगता है तथा वानर हगने (मलत्याग करने) लगता है।

विरज्येते चकोरस्य लोचने विषदर्शनात्।
गतौ स्खलति हंसोऽपि लीयन्ते नात्र मक्षिकाः॥२२॥

विषमिश्रित अन्न को देखते ही चकोर की आँखें फीकी पड़ जाती हैं, अर्थात् उनका रंग धूमिल हो जाता है। हंस चलते हुए लड़खड़ाने लगता है एवं मक्खियाँ उस अन्न पर नहीं बैठती हैं।

यथा लवणसम्पर्कात् स्फुटं स्फुटति पावकः।
विषदूष्यान्नसम्पर्कात् तथा वसुमतीपते! ॥२३॥

हे राजन् ! जैसे लवण के सम्पर्क से अग्नि शीघ्र ही स्फुटित होने लगती है अर्थात् 'चट-चट' शब्द करने लगती है, इसी प्रकार विषदूषित अन्न के सम्पर्क से अग्नि शीघ्र ही स्फुटित होने लगती है, चट-चट ध्वनि करने लगती है।

पुनरुष्णीकृतं सर्वं सर्वं धान्यं विरूढजम्।
दशरात्रोषितं नाद्यात् कांस्ये च निहितं घृतम्॥२४॥

शीतल होने पर पुनः गर्म किया हुआ भोजन तथा सभी प्रकार के अंकुरित धान्य नहीं खाने चाहिए। इसी प्रकार दस दिनों तक कांसे के पात्र में रखा हुआ घी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि यह विषैला बन जाता है।

दधितक्राभ्यां कदलं क्षीरं लवणेन शष्कुलीः कलमा।
गुडपिप्पलिमधुमरिचैः सार्धं सेव्या न काकमाची च॥२५॥

दही व छाछ के साथ केला नहीं खाना चाहिए, नमक के साथ दूध नहीं लेना चाहिए। गुड, पिप्पली, शहद व कालीमिर्च के साथ शष्कुली (पूरी) नहीं खानी चाहिए। कलमा (शालिधान्यविशेष) तथा काकमाची (मकोय), इन दोनों को भी एक साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिए।

भुञ्जीत माषसूपं मूलकसहितं न जातु हितकामः।
दधि च द्विष्टं नाद्याद्विदशनं तैलं तिलविकारं च।
ऋते घृताम्बुभक्षेभ्यः सर्वं पर्युषितं त्यजेत्॥२६॥

दध्ना परिप्लुतं नाद्याद्विशुष्कं पयसा न च।
केशकीटकसंसृष्टं पुनरार्द्रं च वर्जयेत्॥२७॥

अपना हित चाहने वाले व्यक्ति को उड़द की दाल के साथ मूली कभी नहीं खानी चाहिए। इसी प्रकार दही व दूध के साथ भी मूली नहीं खानी चाहिए। बासी या सूखी मूली भी नहीं खानी चाहिए। केश, कीट आदि से युक्त भोज्यद्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए। पुनरार्द्रीकृत (सूखने पर पुनः गीला किए) भोज्य पदार्थों को भी नहीं खाना चाहिए।

भोजनादौ सदा वायुः प्रकुप्यत्यनलो महान्।
घृतप्लुतेन चान्नेन तस्मात्सन्तर्पयेद् वयम्॥२८॥

भोजन के आरम्भ में सदा वात प्रकुपित होता है तथा अग्नि (जठराग्नि) भी अति प्रचण्ड होती है। अतः घृत मिले अन्न से भोजन प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि घृत इन दोनों (वात व अग्नि) को तृप्त कर देता है।

घृतादिपक्वं मधुरं च सर्वं
द्रवप्रधानं प्रथमं विदध्यात्।
ततः परं भोजनमादिशन्ति
पट्वम्लयुक्तं मधुरं च पथ्यम्॥२९॥

भोजन के आरम्भ में घृत आदि से पका द्रवप्रधान मधुर द्रव्य पहले खाना चाहिए, तदनन्तर पटु (लवण) व अम्ल रस वाले और मधुर रसयुक्त पदार्थ का सेवन पथ्य कहा गया है।

तिक्तं कषायं कटुकं तथान्ते
भुञ्जीत सर्वं सबहुद्रवं च।
एवं हि कुर्वन्नृपतिः सदैव
दीर्घायुरारोग्यतनुश्च भूयात्॥३०॥

तीक्ष्णं-ना, तिक्तं-अ.आ.।

भोजन के अन्त में तिक्त, कषाय, कटु (चरपरे) व अति द्रव (तरल) पदार्थ लेने चाहिए। इस प्रकार भोजन करने से राजा सदा दीर्घायु तथा नीरोग रहता है।

कश्चिद्वायुं शमयति रसः कोऽपि वायुं करोति
कश्चित् पित्तं शमयतितरां कोऽपि तस्य प्रकोपी।
कश्चिच्छ्लेष्मप्रशमनतमः कोऽपि तत्कोपकारी
नित्यं तस्मात् सकलरसभुग् भूपतिः स्याच्चिरायुः॥३१॥

कश्चिच्छ्लेष्मप्रचयशमनः-भोजनकुतूहल में उद्धृत,
कश्चिच्छ्लेष्मप्रशमनतमः-अ.आ.ना.।

कोई रस वायु (वात) को शान्त करता है, तो कोई बढ़ाता है। कोई रस पित्तशामक होता है, तो कोई पित्तप्रकोपकारक। कोई रस कफप्रचय (कफवृद्धि) को शान्त कर देता है तथा कोई कफप्रकोप कर देता है। सब रसों का उचित मात्रा में सेवन करने से तो वात, पित्त व कफ सन्तुलित रहते हैं। अतः नित्य सभी रसों का समुचित सेवन करना चाहिए, ऐसा करने वाला राजा दीर्घायु होता है।

यस्मिन्नृतौ ये च रसा बलिष्ठाः
सेव्यास्तु ते तत्र विशेषतोऽपि।
अयं विशेषो न च सर्वदैव
भोज्यं नृपेणैकरसप्रधानम्॥३२॥

'अन्नं विशेषान्न च सर्वदैव' इति भोजनकुतूहले पाठः।

जिस ऋतु में जो रस बलिष्ठ होते हैं, उस ऋतु में विशेष रूप से उन रसों का सेवन करना चाहिए। जैसे शीतकाल में मधुर, अम्ल व लवण का विशेष सेवन तथा शेष का अल्प सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं में भी करना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि राजा सदैव एक रस वाला भोजन न करे।

भक्तं ससूपं सघृतं समांसं
भुक्त्वा च पूर्वं कवलैः कियद्भिः।
पिबेज्जलं शीततरं सुहृद्यं
हृत्कण्ठशुद्धिर्भवतीश्वराणाम्॥३३॥

घी, दाल, मांस (पके/भुने गुद्देदार घृतकुमारी आदि भोज्य) के साथ भात के कुछ ग्रास खाने चाहिए। तदनन्तर शीतल व हृद्य (हृदय को भाने वाला) जल पीना चाहिए, इससे हृदय व कण्ठ की शुद्धि होती है।

एकं व्यञ्जनमासाद्य ततः प्रक्षालयेद् भृशम्।
करं च पुनरन्यच्च भुञ्जीत नृपतिः सुखम्॥३४॥
एवमन्नं हि भुञ्जानः स्वादुत्वं जनयेद् भृशम्।
पुष्टिं च महतीं कुर्यात् विचित्रविधिना कृतम्॥३५॥

राजा को चहिए कि एक व्यञ्जन को खाने के पश्चात् अच्छी प्रकार हाथ धोकर ही दूसरा व्यञ्जन खाए। विशिष्ट पाकविधि से तैयार किए इस प्रकार के अन्न को खाता हुआ राजा विशेष स्वाद का अनुभव करता है। यह अन्न विशेष रूप से पुष्टिकारक होता है।

पानीयपात्राणि सुशीतलानि
सौवर्णरौप्यादिविनिर्मितानि।

सुधौतवस्त्रैः परिवेष्टितानि
वामे निधेयान्यपि दक्षिणे च॥३६॥

सुशीतल जल वाले सोने या चाँदी के पात्र स्वच्छ व धूलिरहित वस्त्रों से वेष्टित कर दायीं व बायीं ओर रखने चाहिए।

एतद् गृहद्वयं कार्यं वामदक्षिणपार्श्वयोः।
चकोरशिखिहंसादीन् पक्षिणो विनिवेशयेत्॥३७॥

भोजनगृह के बायीं व दायीं ओर दो घर बनाने चाहिए, उनमें (विष की पहचान व मनोरंजन करने वाले) चकोर, मोर व हंस आदि पक्षियों को रखना चाहिए।

शृंगारवीरसम्बद्धां शृणुयाच्च कथां शुभाम्।
तेन हर्षो भवेत्तस्य भुञ्जानस्य महीपतेः ॥३८॥

भोजनकाल में राजा को शृंगार व वीररस वाली कथाएँ सुननी चाहिए। इससे भोजन करते हुए राजा की प्रसन्नता बढ़ती है।

भुञ्जानो न बहु ब्रूयादेतन्नान्यच्च किञ्चन।
जुगुप्सितां कथां चैव न ब्रूयात् शृणुयाच्च ताम्॥३९॥

राजा को चाहिए कि भोजन करते हुए बहुत न बोले तथा इधर-उधर की बातें न करे। घृणित चर्चा न करे व न सुने।

लेह्यभक्ष्यादिकं सर्वं भुक्त्वान्नं तु यथासुखम्।
शेषं मांसरसं पीत्वा क्षीरं वा तक्रमेव वा ॥४०॥

लेह्य (चाटने योग्य) व भक्ष्य (दाँतों से चबाकर खाने योग्य) आदि सभी प्रकार के अन्न सुखपूर्वक खाने के उपरान्त दूध या छाछ का पान करना चाहिए।

यथासात्म्यं ततः कुर्यात् सम्यगाचमनं नृपः।
प्रक्षालयेत्करौ सोष्णैर्जलैः स्नेहं च शोधयेत्॥४१॥

चूर्णेन हृद्यगन्धेन मसूरादिकृतेन च।

....

....

ततो रूक्षकवोष्णेन जलेन क्षालयेत्करौ।
गण्डूषान् शीतलान् कुर्याच्चन्दनागरुकल्पितान्॥४२॥

तदनन्तर रूक्ष (चिकनाई रहित) व थोड़े गर्म जल से हाथ-मुंह धोकर, चन्दन व अगर से तैयार किए सुगन्धित शीतल जल से कुल्ले करने चाहिए।

गण्डूषैर्बहुभिः सुशोधितमुखः श्रीचन्दनोन्मिश्रितैः
धूपेनापि सुगन्धिनाथ वदनं घ्राणं करौ धूपयेत्।
मृद्नीयात्तदनु प्रसन्नसुरभि श्रीचन्दनेनावृतौ
पाणी वक्त्रमपि प्रसन्नविलसत्कर्पूरगर्भं मुदा॥४३॥

इस प्रकार श्रीचन्दन-मिश्रित जल के कुल्लों से स्वच्छ मुख वाला राजा सुगन्धित धूप से मुंह, नाक और हाथों को धूपित करे। तदनन्तर स्वच्छ सुन्दर कपूर को मुख में रखे एवं निर्मल व सुगन्धित श्रीचन्दन से युक्त हथेलियों को मले तथा मुख को भी मर्दित करे।

भुक्तोपरि समाचम्य मार्जयित्वाक्षिणी करैः।
पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरं सुधीः॥४४॥

ततः प्रसन्नेन्द्रियचित्तवृत्ति-
रुत्थाय गत्वा च शतं पदानि।
सुकोमले कल्पितचारुतल्पे
सुखं विशेद्वामकटिर्नरेन्द्रः॥४५॥

उसके पश्चात् प्रसन्न इन्द्रिय व चित्तवृत्ति वाला वह राजा सौ पद (कदम) चलकर सुकोमल सुन्दर बिछौने वाली शैया पर बायीं करवट से लेटकर विश्राम करे।

विदग्धाभिः सह स्त्रीभिस्तिष्ठेद् गोष्ठीं समाचरेत्।
निद्रासात्म्येऽथवा निद्रां नृपः कुर्याद् यथासुखम्॥४६॥

तत्पश्चात् राजा विदग्ध (चतुर) स्त्रियों के साथ गोष्ठी (वार्तालाप,

मनोरंजन) करता हुआ कुछ समय बिताए अथवा उस समय यदि निद्रा सात्म्य हो तो विधिवत् नींद ले।

भोजनानुपानम्-

अम्लेन केचिद्विहता मनुष्या
माधुर्ययोगे प्रणयी भवन्ति।
तथाम्लयोगे मधुरेण तृप्ता-
स्तेषां यथेष्टं प्रवदन्ति पथ्यम्॥४७॥

कुछ व्यक्ति अम्ल रस से विहत (निर्विण्ण) हो जाते हैं, ऊब जाते हैं, तब वे मधुर रस से प्रसन्न होते हैं। कुछ व्यक्ति मधुर रस से तृप्त होने पर, ऊब जाने पर अम्ल रस से प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार इन व्यक्तियों के लिए उक्त यथेष्ट रस वाला अनुपान उचित होता है। भाव यह है कि अम्ल से ऊब जाने पर उसका विरोधी मधुर रस वाला अनुपान उपयोगी होता है तथा मधुर से ऊब जाने पर उसका विरोधी अम्ल रस वाला अनुपान लिया जाता है। यह उदाहरण के रूप में बताया गया है। यही स्थिति अन्य रसों वाले अनुपान के विषय में भी समझनी चाहिए।

शीतोष्णतोयासवमद्ययूष-
फलाम्लधान्याम्लपयोरसानाम्।
यस्यानुपानं तु हितं भवेद्यत्
तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत्॥४८॥

शीतल जल, उष्ण जल, आसव, मद्य, यूष, फलाम्ल, धान्याम्ल (काञ्जी), दूध व रस- इनमें से जो जिसके लिए अनुपान रूप में विहित है, उसे वही मात्रा में देना चाहिए।

व्याधिं च कालं च विभाव्य धीरै-
र्देयानि भोज्यानि च तानि तानि।
सर्वानुपानेषु वरं वदन्ति
मेध्यं यदम्भः शुचिभाजनस्थम्॥४९॥

लोकस्य जन्मप्रभृति प्रशस्तं
तोयात्मकाः सर्वरसाश्च दृष्टाः।

संक्षेप एषो विहितोऽनुपानेऽ-
प्यन्यैश्च तैर्विस्तरितं समस्तम्॥५०॥

रोग व काल (दिन, रात एवं ऋतु आदि) को देखकर वैद्यों द्वारा रोगियों को उचित पथ्य आहार के साथ अनुपान देने चाहिए। पवित्र पात्र में स्थित शुद्ध जल सभी अनुपानों में श्रेष्ठ माना जाता है। जल जन्म से लेकर मनुष्य के लिए सात्म्य (अनुकूल) है, सभी रस जल स्वरूप ही देखे गए हैं। अतः जल ही सर्वोत्तम अनुपान होता है। यहाँ संक्षेप से ही अनुपान विषय कहा गया है, अन्य विद्वानों ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

....

....
मया सुषेणेन कृतं हिताय
प्राणप्रसादं जनयेच्च शीघ्रम्॥५१॥

॥ इत्यायुर्वेदमहोदधौ सुषेणकृते भोजनवर्गः ॥

ताम्बूलवर्गः

अथातस्ताम्बूलगुणाः कथ्यन्ते-

कर्पूरकंकोललवङ्गपूग-
जातीफलैः नागरखण्डपत्रैः।
सुधाश्मचूर्णं खदिरस्य सारं
कस्तूरिकाचन्दनचूर्णमिश्रम्॥१॥

कर्पूर, कंकोल, लवंग (लौंग), सुपारी, जायफल व नागरखण्ड (मुस्ता/मोथा) के टुकड़ों को पान के पत्तों पर रखें तथा सुधाश्मचूर्ण (चूना), खदिरसार (कत्था), कस्तूरी व चन्दन के चूर्ण को उनमें मिलाएं, इस प्रकार यह राजोपयोगी ताम्बूल बनता है।

ताम्बूलमेतत्प्रवरं वदन्ति
सौभाग्यदं कान्तिसुखप्रदं च।
आरोग्यमेधास्मृतिबुद्धिवृद्धिं

करोति वह्नेरपि दीपनं च॥२॥

इस प्रकार के ताम्बूल को बहुत उत्तम, सौभाग्यप्रद, कान्तिकर व सुखदायक कहा गया है। यह आरोग्य, मेधा, स्मृति व बुद्धि की वृद्धि करता है तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

अनंगसन्दीपनभावमध्ये
प्रधानमेतत् समुदाहरन्ति।
अतो हि सर्वे सुखिनो मनुष्या
अहर्निशं प्रीतिकरं भजन्ते॥३॥

ताम्बूल अनंग-सन्दीपन (रतिस्पृहा को बढ़ाने वाला) होता है। अतः स्वस्थ व सुखी रागी जन सदा इसका सेवन करते हैं।

ताम्बूलपत्राणि हरन्ति वातं
पूगीफलं हन्ति कफं सुवृद्धम्।
चूर्णं निहन्यात् कफवातमुच्चै-
र्हन्याच्च पित्तं खदिरस्य सारः॥४॥

ताम्बूल के पत्ते वातनाशक होते हैं व सुपारी बढ़े हुए कफ को नष्ट करती है। ताम्बूल (पान) के अन्दर प्रयुक्त किया जाने वाला चूर्ण (चूना) कफ व वात को नष्ट करता है तथा उसी के साथ प्रयुक्त किया जाने वाला खदिरसार (कत्था) पित्त को नष्ट करता है।

इत्थं हि ताम्बूलमुदाहरन्ति
दोषत्रयस्यापि निवारणाय।
अतो हि सेवेन्न कथं तदेतद्
विचक्षणः प्राकृतमानुषोऽपि॥५॥

अतो न सेवेत-अ., अतो हि सेवेन्न-ना.।

इस प्रकार बुधजन ताम्बूल को तीनों दोषों का निवारण करने वाला बताते हैं। ताम्बूल की इस विशिष्टता को देखते हुए बुधजन ताम्बूल का सेवन क्यों नहीं करेंगे? इन विशेषताओं को देखकर तो सामान्य मनुष्य भी ताम्बूल-सेवन की इच्छा करेगा।

ताम्बूल-निषेध-

न नेत्ररोगे न च रक्तपित्ते
क्षते न रूक्षे न विषे न शोषे।
मदात्यये नापि न मोहमूर्छा-
श्वासेषु ताम्बूलमुशन्ति वैद्याः॥६॥

नेत्ररोग, रक्तपित्त, घाव, रूक्षता, विषविकार, शोष, मदात्यय, मोह मूर्छा व श्वास रोग में वैद्य लोग ताम्बूल का निषेध करते हैं; क्योंकि इनमें ताम्बूल-सेवन बहुत हानिकारक होता है।

भुक्त्वान्नं सलिलं पीत्वा गृहीत्वा बहुभेषजम्।
प्रतीक्ष्य घटिकामेकां ताम्बूलं भक्षयेन्नरः॥७॥

भोजन के उपरान्त, पानी पीने के उपरान्त तथा बहुत मात्रा वाली औषध लेने के उपरान्त एक घड़ी (चौबीस मिनट) प्रतीक्षा करके ही ताम्बूल खाना चाहिए।

गायत्री-गुटिका/गायत्री चूर्ण-

गायत्रीगुटिकाचूर्णं पूगनागलतादलम्।
यथोत्तरं यथास्वादमधिकांगेन योजितम्॥८॥

गायत्री अर्थात् खदिर वृक्ष से बने कत्थे की गोली या चूर्ण, पूग (सुपारी), नागलता (पान की बेल) का पत्ता, इनको यथोत्तर स्वाद के अनुसार अधिक मात्रा में लिया जा सकता है।

समपत्रफले रागो विरागस्तु फलाधिके।
चूर्णाधिके तु दुर्गन्धि पत्राधिक्ये सुगन्धिता॥९॥

पान में डाले जाने वाली पूगीफल (सुपारी) व पत्तों की समानता होने पर लालिमा अधिक होती है। फल की अधिकता होने पर लालिमा में कमी आ जाती है। पान में चूर्ण (चूने) की अधिकता से दुर्गन्ध तथा पत्तों की अधिकता से सुगन्ध आती है। रात को जो पान खाएं उसमें पत्ते की अधि कता होनी चाहिए।

प्रातः पूगाधिकं कुर्यात् चूर्णाधिक्यं तु मध्यमे।

रात्रौ पत्राधिकं कुर्यात्ताम्बूलस्येति लक्षणम्॥१०॥

प्रातः अर्थात् पूर्वाह्न के पान में सुपारी की अधिकता होनी चाहिए, मध्याह्न के पान में चूने की तथा रात्रि के पान में पत्तों की अधिकता होनी चाहिए।

तदेव भूयः खदिरेण युक्तं
कुर्यादरोगं विशदं च वक्त्रम्।
आमोदनं रोचनदीपनं च
प्रमेहमूत्रामयनाशनं च॥११॥

यदि पान में खदिर अर्थात् खैर से बने कत्थे की अधिकता हो तो वह आरोग्यकारक होता है तथा मुख को स्वच्छ करता है। कत्थे की अधिकता वाला पान आमोदकारक, रोचनदीपन होता है व प्रमेह एवं मूत्ररोगों को नष्ट करता है।

आलस्यविद्रध्युपजिह्विकानां
सतालुदन्तार्बुदशोणितानाम्।
गलास्यगण्डापचितालुशोष-
श्लेष्मामयानां च भृशं प्रशस्तम्॥१२॥

आलस्य, विद्रधि (पस), उपजीह्विका (जिह्वा का रोग, जिसमें जीभ पर सूजन तथा लालास्राव होता है), तालुरोग, दन्तार्बुद (दन्तशोथ नामक रोग), रक्तपित्त, कण्ठरोग, गलगण्ड, अपचित, तालुशोष व कफरोगों में कत्था बहुत प्रशस्त माना जाता है।

आद्यं तत्पीककं त्याज्यं महादोषकरं यतः।
द्वितीयं दुर्जरं भेदि तृतीयाद्यमृतोपमम्।१३॥

पान की पहली पीक त्याज्य होती है, क्योंकि यह महादोषकारक होती है। दूसरी पीक दुर्जर व भेदी होती है। अतः वह भी त्याज्य है। इसके अनन्तर तीसरी व आगे वाली पीक अमृततुल्य मानी जाती है।

पर्णस्य मूलं हरति यशो व्याधिं करोति च।
मध्यं लक्ष्मीहरं चाग्रमनायुष्यं च पापकृत्।

शिरा बुद्धिं हरेच्चूर्णं पर्णं लक्ष्मीहरं परम्॥१४॥

पर्णमूल (पान के पत्ते का मूल भाग) यश का नाशक तथा व्याधि जनक होता है। पत्ते का मध्यभाग लक्ष्मीहर होता है तथा अग्रभाग अनायुष्य (जीवन के लिए अहितकर) एवं पापकृत (दोषकारक) होता है। पान के पत्ते की सिरा (नस जैसी धारी) बुद्धिनाशक होती हैं। .....
....

ताम्बूलं नैव सेवेत सुविरिक्तः क्षुधातुरः।
प्रमेही मूत्रकृच्छ्री च क्षीरमभ्यवहृत्य च॥१५॥
ताम्बूलं नैव सेवेत क्षीरं पीत्वा तु मानवः।
यावत्तत्पच्यते क्षीरं मुहूर्त्ताद्वापि शस्यते॥१६॥

जिसने तीव्र विरेचन लिया है तथा जिसे बहुत अतिसार हो चुका है, ऐसे व्यक्ति को पान का सेवन नहीं करना चाहिए। भूख से व्याकुल व्यक्ति को भी पान नहीं खाना चाहिए। प्रमेह व मूत्रकृच्छ्र वाले व्यक्ति के लिए भी पान का सेवन निषिद्ध है। दूध पीने के उपरान्त भी पान नहीं खाना चाहिए। जब तक दूध न पचे तब तक पान के सेवन से बचना चाहिए।

दन्तदौर्बल्यपाण्डुत्व-नेत्ररोगबलक्षयान्।
वितनोत्यास्यरोगांश्च ताम्बूलमतिसेवितम्॥१७॥

ताम्बूल का अधिक सेवन करने से दाँतों की दुर्बलता, पाण्डुता (पीलापन), नेत्ररोग, बलक्षय व मुख के रोग हो जाते हैं। अतः सावधानी पूर्वक ताम्बूल के अतिसेवन से बचना चाहिए।

वातश्लेष्मप्रशमनं हृद्यं वह्नेश्च दीपनम्।
मुखवैरस्य हरणं कंकोलं भक्तपाचनम्॥१८॥

भुक्तपाचनम्–ना., भक्तपाचनम्–आ.।

ताम्बूल में प्रयुक्त किए जाने वाले घटकों में से कंकोल वातकफ का शामक, हृद्य, जठराग्निदीपन, मुखवैरस्य निवारक (मुख की विरसता या विकृत स्वाद को दूर करने वाला) तथा भोजन को पचाने वाला होता है।

जातीफलं रोचनदीप्तिकृच्च
कफापहं कण्ठरुजापहं च।
रसे कटु श्रेष्ठमजीर्णनाशे
निहन्ति शुक्रं कुरुते च पित्तम्॥१९॥

जातीफल (जायफल) रोचन (भोजन में रुचि पैदा करने वाला), दीप्तिकृत् (जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला), कफनाशक व कण्ठरोग निवारक होता है। यह रस में कटु होता है तथा अजीर्ण-निवारण के लिए श्रेष्ठ माना जाता है। जातीफल पित्तकारक व शुक्रकर (शुक्रप्रवर्तक) होता है।

कंकोलजातीफलवल्लवंगं
विशेषतश्छर्दिहरं विषघ्नम्।
स्वरक्षये चापि मुखस्य पाके
त्वजीर्णबाधासु च पथ्यमेतत्॥२०॥

अजीर्णबाधासु-अ.ना., त्वजीर्णबाधासु-ला.।

कंकोल व जायफल सहित लौंग रस में कटु, अजीर्ण-निवारण में अति उपयोगी, शुक्रहर व पित्तकर होती है। यह विशेषरूप से छर्दिहर व विषनाशक होती है। स्वरक्षय होने पर (गला बैठने पर) अथवा मुख के पक जाने पर, अजीर्णबाधा होने पर भी उक्त गुणों वाली लौंग पथ्य मानी जाती हैं।

एलाद्वयं छर्दिषु मूत्रकृच्छ्रे
मन्देऽनले पथ्यमरोचके च।
स्वादुः सुशीतो मधुरश्च पाके
अरोचकं हन्ति च जातिकोशः॥२१॥

मन्दानले-आ., मन्देऽनले-ला.ना.।

दोनों इलायचियाँ (छोटी और बड़ी) छर्दि, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि व अरुचि में पथ्य होती हैं। जातिकोश (जातिपत्री/जावित्री) स्वादु, सुशीतल, पाक में मधुर होती है एवं अरोचक (भोजन की अरुचि) को दूर करती है।

ताम्बूलयोग्यं क्रमुकं च तज्ज्ञा
मासत्रयादूर्ध्वमुदाहरन्ति।
मांसे व्यतीते तु भवन्ति पर्णा-
न्यतीव हृद्यानि मनोहराणि॥२२॥

पूर्णा–अ.आ., पर्णा–गो.।

ताम्बूल के विशेषज्ञ बतलाते हैं कि तीन मास के उपरान्त सुपारी ताम्बूल के योग्य बन जाती है। इसी प्रकार नागवल्ली (पान की बेल के पत्ते) एक मास के उपरान्त ताम्बूल के योग्य हृद्य व मनोहर हो जाते हैं।

आर्द्रं तु गुर्वभिष्यन्दि दृष्ट्यग्निवधकृत्परम्।
शुष्कं तु वातलं स्निग्धं त्रिदोषशमनं परम्॥२३॥

गीली (कच्ची) सुपारी गुरु, अभिष्यन्दी, दृष्टिनाशक व मन्दाग्निकारक होती है। सूखी सुपारी वातकारक, स्निग्ध व त्रिदोषशामक होती है।

स्विन्नपूगं त्रिदोषघ्नं पक्वं शुष्कं तु वातलम्।
पक्वार्द्रं गुर्वभिष्यन्दि बालार्द्रकफपित्तहृत्॥२४॥

स्विन्नपूगं त्रिदोषघ्नं–अ.ना., चित्रपूगं–आ.।

उबाली हुई अथवा पकाई हुई सुपारी त्रिदोषनाशक होती है। पेड़ पर स्वयं पककर सूखी सुपारी वातकारक होती है। परिपक्व होने पर बिना सूखे अर्थात् गीली अवस्था में सुपारी गुरु व अभिष्यन्दी होती है।

पूगं स्याद् दृढमध्यं यच्छ्रेष्ठं नानाविधं हि तत्।
पाकदेशादिभेदेन चिक्कणं सर्वदोषहृत्॥२५॥ पूगगुणाः

दृढमध्य अर्थात् मध्यभाग में दृढता वाली सुपारी उत्तम होती है। पाक (परिपक्वता) व देश आदि के भेद से यह अनेक प्रकार की होती है। चिकनी सुपारी सर्वदोषहर होती है।

स्थूलक्रमुकताम्बूलं श्लेष्मलं कृमिवर्धनम्।
तदेव शुष्कं वर्णाढ्यं श्लेष्मघ्नं कृमिनाशनम्॥२६॥

मोटी सुपारी वाला पान कफकारक व कृमिवर्द्धक होता है। शुष्क

होने पर वही उत्तम वर्ण वाला, कफहर व कृमिनाशक बन जाता है।

तीक्ष्णोष्णः परिणामशीतलतरः कण्डूप्रमेहापहो
नानास्रावजलाधिककृमिहरसतृड्दाहपाकं जयेत्।
श्लेष्मघ्नश्च गलग्रहापहरणः संसुप्तजिह्वाग्रजित्
कर्पूरः खलु दिव्यसौरभगुणः पोताश्रयः स्फाटिकः॥२७॥

पित्ताश्रयः स्फाटिकः-ना., पित्तास्त्रयः स्फाटिकः-ला., पोताश्रयः स्फाटिकः-आ.।

दिव्य सुगन्ध से युक्त, स्फटिक जैसा धवल, पोताश्रय नामक कर्पूर तीक्ष्ण, उष्ण, परिणाम में शीतलतर, खुजली व प्रमेह का नाशक तथा लालास्राव (लार टपकना) को दूर करने वाला एवं कृमिहर होता है। यह प्यास, जलन व पाक (मुखपाक, मुंह पकने का रोग/मुंह के छाले) को नष्ट करता है। यह कफनाशक होता है तथा गलग्रह (गला बैठने के रोग) को दूर करता है।

गलग्रहे सुप्तजिह्वे नानास्रावजलाधिके।
श्लेष्ममेहकृमीन् हन्ति कर्पूरो भास्करोऽपरः॥२८॥

कर्पूरश्चाक्षुषः सरः-अ., कर्पूरो भास्करा...रः-आ.।

उदयभास्कर नामक कर्पूर का एक अन्य भेद है, जो 'सुप्तजिह्व' नामक उस विकार को दूर करता है, जिसमें रस-संवेदन करने वाला जिह्वा का अग्रभाग जड़ (निष्क्रिय) हो जाता है। यह कर्पूर कफ, प्रमेह व कृमियों को नष्ट करता है।

कर्पूरः कफसम्भेदी तीक्ष्णोष्णः शीतलःपरः।
प्रमेहतृड्विदाहघ्नो लक्ष्मीसौभाग्यवर्धनः॥२९॥

कर्पूर कफनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण व परम शीतल होता है। यह प्रमेह, तृषा, विदाह का निवारक होता है तथा लक्ष्मी (शोभा) व सौभाग्य (सौन्दर्य) को बढ़ाता है। इस प्रकार यहां ताम्बूल के प्रसंग में कपूर आदि उसके घटक द्रव्यों का भी वर्णन किया जा रहा है, जिससे पान सेवन करने वाले उनसे अवगत हो सकें।

कस्तूरी सौरभाढ्या कटुकरसगुरुक्षारतिक्तोष्मयुक्ता
शीताटोपापहन्त्री कफपवनहरा पित्तकृत् शुक्रला च।
चित्तप्रोल्लासहेतुर्वमथुविषहरा गात्रदौर्गन्ध्यहन्त्री
क्षुण्णा पित्तप्रकोपं प्रशमयति भृशं हन्ति शोषं विषं च॥३०॥

कटुकरसयुता-अ., कटुकरसगुरु-ना.।

कस्तूरी अति सुगन्धित, कटु, गुरु, क्षार, तिक्त व उष्ण होती है। यह शीत के प्रकोप को दूर करती है। कफहर, वातनाशक, पित्तकर व शुक्रवर्द्धक होती है। यह चित्त को प्रसन्न करती है। छर्दि, विष व शरीर की दुर्गन्ध को दूर करती है। पिसी हुई कस्तूरी पित्तप्रकोप को शान्त करती है तथा शोषरोग व विष का निवारण करती है।

या गन्धं केतकीनां वहति भृशतरं वर्णतः पिंगलाभा
स्वादे तिक्ता कटूष्णा लघु परितुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात्।
दग्धा नो याति भूतिं चिमि-चिमि कुरुते चर्मगन्धा हुताशे
सा शुद्धा शोभनीया मृगवरतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा॥३१॥

जो केतकी (केवड़ा) व हाथियों के मदजल की गन्ध को धारण करती है और रंग की दृष्टि से हाथियों के मद जैसे कृष्णवर्ण वाली होती है, स्वाद में तिक्त या कटु और तोलने में हल्की होती है तथा मसलने पर चिकनी हो जाती है, जो अग्नि में डालने पर बहुत देर तक नहीं जलती तथा चिमि-चिमि ध्वनि करती है और जलने पर चमड़े की गन्ध जैसी गन्ध देती है, वह श्रेष्ठ मृग के शरीर से उत्पन्न कस्तूरी उत्तम मानी जाती है तथा राजाओं के लिए उपभोगयोग्य होती है।

करतलजलमध्ये स्थापनीया महद्भिः
पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं मुहूर्त्तम्।
यदि भवति च रक्तं तज्जलं पीतवर्णं
न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽयं विकारः॥३२॥

चिन्तनीया-अ., चिन्तनीयं-ना.। कृत्रिमोऽसौ-ना., कृत्रिमोऽयं-आ.।

हथेली में थोड़ा जल लेकर उसमें कस्तूरी को रखें, मुहूर्तभर प्रतीक्षा करें। यदि वह पानी लाल या पीला हो जाए तो समझें कि यह कस्तूरी

नहीं, अपितु कृत्रिम विकार है।

अनुलेपनवर्गः

चन्दनं रक्तपित्तघ्नं दाहमूर्च्छातिसारनुत्।
शीतलं श्लेष्मलं हृद्यं किञ्चिद्वातप्रकोपनम्॥३३॥

चन्दन रक्तपित्तनाशक, दाहहर, मूर्च्छानिवारक व अतिसारनाशक होता है। यह शीतल, कफवर्द्धक, हृद्य होता है तथा कुछ वातप्रकोपक माना जाता है।

पित्तास्रं हरते सदाहपवनं व्यापादयन्तः सदा
मूर्च्छामोहतृषास्यशोषशमनं दुर्गन्धिनिर्नाशकः।
कण्डूकुष्ठभगन्दरस्य वसनः पित्तं छिनत्तिस्तथा
मेहं कृच्छ्रमतीवदुर्धरतरं निर्नाशयन्तोहठात्॥३४॥

सदनः–ना, वसनः–आ.।

चन्दन पित्तरक्तहर, दाहशामक व वातनाशक होता है और मूर्च्छा, मोह, तृषा, आस्यशोष (मुख सूखना) व दुर्गन्ध को दूर करता है। यह कण्डू, कुष्ठ, भगन्दर, पित्तविकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है।

रोगान्नैकविधान् व्यपोहति सदा माषाश्रयः सौरभः

....

....

मलयाद्रिर्मोहदोषघ्नी रक्तपित्तनिबर्हणी।
मूर्च्छाशोषप्रशमनी वक्त्रदुर्गन्धनाशनी॥३५॥

.... मोह, त्रिदोष व रक्तपित्त को दूर करती है। यह मूर्च्छा व शोष का शमन करती है तथा मुख की दुर्गन्ध को नष्ट करती है।

शीतं पित्तविनाशनं समधुरं किञ्चित्सतिक्तं तथा
कण्डूशोषविषापहं कृमिहरं सौभाग्यकान्तिप्रदम्।
सौगन्ध्यं कुरुते किमप्यभिनवं गात्रेषु पुष्टिप्रदं
सन्तोषं विदधाति चेतसिपरं स्निग्धं च कृष्णागरु॥३६॥

कृष्णागरु (काला अगर) स्निग्ध, शीतल, पित्तनाशक, अति मधुर व
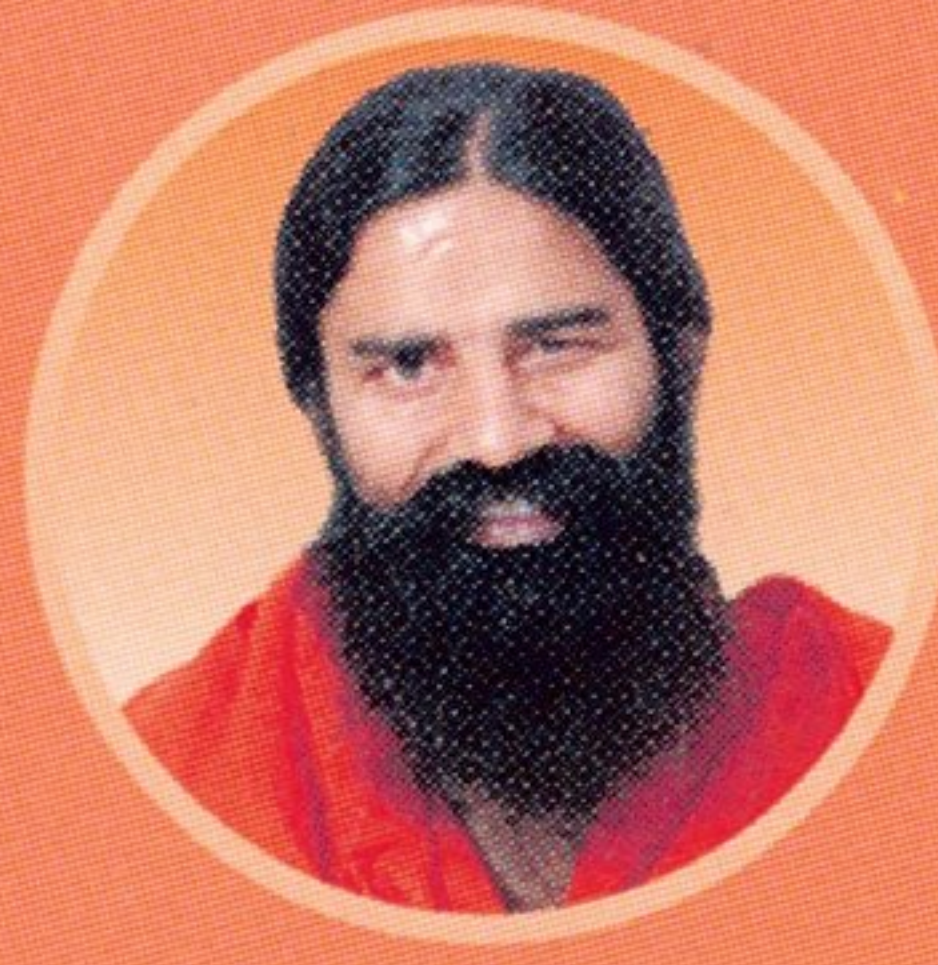
आयुर्वेद-महोदधिः

(सुषेण-निघण्टुः)

(अन्नपानविधि-विषयक प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थ)

स्वस्थ रहने के लिए उचित आहार-विहार की जानकारी परमावश्यक है, इसके लिए चरक, सुश्रुत व काश्यप-संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थों में अन्नपान-विधि व स्वास्थ्योपयोगी उत्तम दिनचर्या का वर्णन किया गया है। इन्हीं प्राचीन संहिताओं के आधार पर वैद्यराज सुषेणदेव ने इस ग्रन्थ में विस्तार से सरल व सुललित शैली में अन्नपान-विधि एवं उष:पान, व्यायाम, अभ्यंग (मालिश), स्नान आदि दिनचर्या के अंगों का रुचिकर व तथ्यपूर्ण विवेचन किया है।

इसमें आहार-द्रव्यों के गुण व स्वरूप का विशद वर्णन किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को कैसा आहार-विहार अपनाना चाहिए, जिससे वह रोगों से बचते हुए सदा स्वस्थ, बलवान् व प्रसन्न रह सके, इसका वर्णन यहाँ रोचक व सरस रूप में किया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ स्वास्थ्य-रक्षा हेतु ऋषियों द्वारा प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण जानकारी को अपने में समाहित किए है। इसका अध्ययन कर तदनुरूप आचरण करने वाला व्यक्ति निश्चित ही स्वस्थ, बलवान् व दीर्घायु होगा।

मूलत: संस्कृत में लिखा यह प्राचीन ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित था। इसकी हस्तलिखित प्रतियों का अन्वेषण कर श्रद्धेय आचार्यश्री ने इसे पहली बार सरल हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। यह आयुर्वेद के क्षेत्र में आचार्यश्री का विशेष अवदान है। एतदर्थ मैं उनको भूरिश: बधाई देता हूँ व पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि इस ग्रन्थ का अध्ययन कर आयुर्वेद-विषयक आवश्यक ज्ञान सरलता से प्राप्त करें व अवश्य ही लाभान्वित होवें।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।

सभी के सुखमय आरोग्य की मंगल कामना के साथ,

आपका-

स्वामी रामदेव